प्रकाशक

भारतवासी प्रेस

दारागंज—प्रयाग

मूल्य १॥)

सन् १९४८

मुद्रक

पं० प्रतापनारायण चतुर्वेदी,

भारतवासी प्रेस, दारागंज-प्रय

देव-रत्नावली

महाकवि देवदत्त का जन्म सम्वत् १७३० में इटावे में हुआ था । छ लोग मैनपुरी को इनकी जन्मभूमि बतलाते हैं। इसका कारण ही समझ पड़ता है कि पहिले इटावा और मैनपुरी के ज़िले सम्मिलित । इनके वंशज अब भी कुसमरा गाँव में निवास करते हैं जो इटावा मैनपुरी जाने वाली सड़क पर बत्तीसवें मील पर बसा हुआ है । नके वंश की एक शाखा के लोग इटावे में रहते हैं और दूसरी शाखा कुसमरा में । ये दुसरिहा कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे ।

सरोज कार ने इन्हें मैनपुरी मण्डलान्तर्गत सयाने गाँव का नेवासी माना है, पर उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया । इसके विपरीत वजी ने स्वयं अपने को इटावे का निवासी कहा है । ऐसी दशा में सरोजकार का मत सर्वथा माननीय नहीं है ।

देवजी में विलक्षण कवि प्रतिभा थी । वे स्वामी हितहरिवंश की सम्प्रदाय के बारह शिष्यों में प्रमुख व्यक्ति थे । इनकी लोकोत्तर कवि प्रतिभा का परिचय इससे मिलता है कि इन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में 'भाव विलास' और अष्टयाम' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ बनाये थे । इतना ही नहीं, अष्टयाम को तो औरंगजेब के पुत्र आजमशाह ने बड़ी ही स्नेहार्द्र दृष्टि से देखा था और उसकी प्रशंसा भी की थी । इसे देव का दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि आज़मशाह जैसे आश्रयदाता को पा कर भी वे अन्यमुखापेक्षी बने रहे ।

आज़मशाह औरंगजेब के तृतीय पुत्र थे । इनकी अवस्था उस समय लगभग २६ वर्ष की होगी । ये बड़े ही वीर, गुणज्ञ और विद्या प्रेमी थे, और साथ ही गुणियों का बड़ा सत्कार भी करते थे । सम्राट

औरंगजेब के यह उस समय बड़े कृपापात्र भी थे। इस कृपा का क
यह भी था कि सम्राट ने अपने द्वितीय पुत्र मुअज़्ज़म शाह
प्रकारान्तर से राजवंदी बना रक्खा था। देव से आजमशाह की
सम्भवतः दक्षिण में हुई होगी, क्योंकि उस समय वे अपने पिता
साथ दक्षिण में थे और वहीं पर सेना संचालन करते थे।

विधि विडम्बना वश औरंगजेब आज़मशाह से रुष्ट हो गया
उसने उन्हें गुजरात का शासक नियुक्त किया। मुअज़्ज़म फिर स
का कृपापात्र हुआ। सम्वत् १७६४ में औरंगजेब की मृत्यु के अ
मयूर सिंहासन के लिये गृहयुद्ध में आज़मशाह मारा गया और
का सम्बन्ध राज दरबार से छूट गया।

कहते हैं कि देवजी एक बार भरतपुर नरेश से मिलने गये।
समय वे डीग दुर्ग निर्माण करा रहे थे। महाराज ने देव का
सत्कार किया और इन्हें छंद बनाने के लिये आज्ञा दी, परन्तु उ
उस समय छंद सुनाने से निषेध किया और कहा कि 'महाराज
समय सरस्वती की आज्ञा नहीं है।' परन्तु महाराज ने इनसे
सुनाने का बार बार अनुरोध किया। कहते हैं कि देव वाक्य
कवीश्वर थे। जो कुछ कहते थे वही हो करके रहता था। राजा
अनुरोध मानकर उन्होंने छंद तो सुनाया, परन्तु न जाने कैसे
मुख से यह बात निकल गई कि डीग के दुर्ग में सैनिकों के शिर ठु
फिरेंगे। कहते हैं कि थोड़े ही दिनों के बाद देव की यह भविष्य
सर्वथा सत्य निकली। देव जी को इसके लिये जो पुरस्कार मिला
उसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं।

देव जितने ही विद्वान थे उतने ही स्वाभिमानी भी थे, औ
स्वाभिमान की मात्रा इनमें यहाँ तक बढ़ी हुई थी कि यह इन्हें
जमकर नहीं रहने देती थी। जहाँ कोई बात इनकी प्रतिष्ठा के
मात्र भी प्रतिकूल हुई, कि इन्होंने अपने आश्रयदाता को छोड़ा।

कारणवश देव जी को जन्म भर किसी न किसी आश्रयदाता की खोज में रहना पड़ा। राजाओं के आश्रित रहकर भी इन्होंने उनकी अनुचित प्रशंसा नहीं की। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः उन्होंने इनका यथेष्ट आदर ही न किया हो, अथवा सम्राट का आदर प्राप्त करने के अनन्तर इन्हें उनका आदर कुछ जचा न हो।

इनके दो एक ग्रन्थ किसी को समर्पित भी नहीं हैं। आश्रयदाता की खोज में इन्होंने लगभग भारतवर्ष भर की यात्रा की थी, और वहाँ के निवासियों की गति विधि का निरीक्षण करके इन्होंने अपने अनुभव के आधार पर 'जाति विलास' नाम के एक ग्रन्थ का निर्माण किया है; जिसमें भारत भर के भिन्न भिन्न देशों की स्त्रियों को नायिका मानकर उनके वेष एव जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। ये चित्र एक प्रत्यक्ष-दर्शी अनुभव के स्पष्ट प्रमाण हैं।

अन्त में घूमते घूमते देव जी को एक गुणज्ञ आश्रयदाता मिल ही गया। इनका नाम राजा भोगीलाल था। इन भोगीलाल का देव जी ने ऐसा उत्कृष्ट वर्णन किया है जैसा कि इन्होंने किसी आश्रयदाता का नहीं किया था। इन्हीं के लिये देव ने सम्भवत् १७८३ में 'रस विलास' नाम का ग्रन्थ बनाया। यद्यपि देवजी इससे पहिले भवानीदत्त, कुशल-सिंह और राजा उद्योत सिंह के यहाँ भी रह चुके थे परन्तु भोगीलाल के आदर के सामने सब को भुला दिया।

खेद का प्रसंग तो यह है कि यहाँ भी देवजी बहुत दिनों तक न रह सके। या तो भोगीलाल से भी इनका वैमनस्य हो गया हो, या इनका शरीर पात हो गया हो, तभी यह वहाँ से चले आये होंगे; क्योंकि इस समय इन्होंने जो 'शब्द रसायन' ग्रन्थ बनाया है वह किसी को समर्पित नहीं है।

इसके उपरान्त देवजी को कदाचित् बहुत दिनों तक कोई आश्रय-दाता नहीं मिला और ये अपने घर पर रहकर ही काव्य रचना करते

रहे। अन्त में इन्हें पिहानी निवासी अकबर अली खाँ का आश्रय मिला और इन्होंने अपनी समस्त रचनाओं का संग्रह 'सुखसागर तरंग' के नाम से खाँ साहेब को सम्वत् १८२४ में समर्पित किया। इसके बाद उनकी और कोई रचना नहीं मिलती, इससे अनुमान होता है कि देवजी का देहान्त ८४ वर्ष में सम्वत् १८४० के लगभग हुआ होगा।

देवजी भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे, और वेदान्त के भी ज्ञाता थे। राधा माधव के श्रृंगार के व्याज से उन्होंने प्रेम सन्देश दिया है। सब से पहिले देव ने ही श्रृंगार को रसराज माना है। फलतः उनका काव्य श्रृंगार रस से ओतप्रोत है।

जहाँ देवजी एक उच्चकोटि के साहित्यिक थे, वहाँ वे अच्छे संगीतज्ञ भी थे। संगीत विद्या का उन्हें अच्छा ज्ञान था। यह बात और है कि वह तानसेन के समान अच्छे गवैये न हों; पर वे उसके मर्म को अवश्य समझते थे। दशांग काव्य पर देव ने जैसा डट कर लिखा है वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं लिखा। देवजी अपनी रचनाओं में केशव के समान बरबश अलंकार ठूँसने का प्रयत्न नहीं करते थे। उनकी रचना भाव प्रधान होती थी, पर हाँ, अनुप्रास वे अवश्य कुछ टेढ़े मेढ़े रख देते थे परन्तु उनका सुन्दर निर्वाह भी कर लेते थे। यह भी देव की सफलता का एक कारण है।

देव की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा होती थी। उसे टकसाली भाषा कहें तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। वे शब्दों का संस्कार भी कर लिया करते थे और उन्हें ऐसा फिट करते थे कि वे अपने स्थान पर जग-मगाने लगते थे।

देव से पहले कविगण काव्यकला के अधिक समर्थक थे। इसका परिणाम यह होता था कि भाषा और अलंकारों के द्वारा भाव कुंठित रहता था, और स्वच्छंद गति से न चल पाने के कारण उसका सम्यक रूप से विकास भी नहीं होने पाता था। निष्कर्ष यह कि भाव कला का अनुवर्ती था।

कुछ दिनों के बाद कवियों और आलोचकों के दृष्टिकोण परिवतन हुआ और यह स्थिर किया गया कि कला कौशल भाव उत्कर्ष प्रदान करने के लिये है उसका नियंत्रण करने के लिये नहीं

इन दोनों विभिन्न काव्य-प्रणालियों के समर्थक दो प्रतिनिधि हुए अलंकार प्रणाली के समर्थक कविवर केशवदासजी थे और भ प्रधानप्रणाली के समर्थक कविवर देव जी।

देवजी का विद्वान मंडली में उस समय बड़ा सम्मान था। इन समकाकीन कवि बड़े आदर के साथ इनका नाम लेते थे। सम्व १७९२ में दलपति राय वंशीधर ने अपने 'अलंकार रत्नाकर' नाम पुस्तक में देवजी के बहुत से छन्दों को उद्धृत किया है। इसी प्रक सम्वत् १८०३ में आचार्य्य प्रवर भिखारी दास ने भी अपने 'का निर्णय' में देव जी का बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। सम्व १८१४ में कविवर सूदन ने भी 'सुजान चरित्र' में देवजी का न उल्लेख किया है। १८८७ में प्रतापसाहि ने तो अपने 'काव्य विला में देव के बहुत छन्दों को उदाहरण स्वरूप दिया है और अन्त भारतेन्दु बाबू ने अपने 'सुन्दरी सिंदूर' में देव के न जाने कितने मु छन्द उद्धृत किये हैं। अयोध्याधीश महाराज मानसिंह ने तो अप उपनाम ही देव रख छोड़ा था। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने इन्हें अ 'सरोज' में भामह और मम्मट के समान हिन्दी भाषा का आच माना है। इसी से देव की महत्ता प्रगट होती है।

देवजी के समकालीन कवियों में उर्दू साहित्य में उस स औरंगाबाद निवासी कविवर वली का बड़ा नाम था। मराठी सा में कविवर श्रीधर ललित रचनायें कर रहे थे। गुजराती साहित्य को प्रेमानन्द भट्ट अपनी रचनाओं के द्वारा गौरवान्वित कर रहे और हिन्दी भाषा में सुखदेव, कालिदास वृन्द, नाथ एवं उदयलाल रचनाओं की धूम था।

देवजी की रचनायें

कुछ लोगों का अनुमान है कि देवजी ने सब मिलाकर ७२ ग्रन्थ बनाये हैं परन्तु कुछ लोग इन्हें ५२ ग्रन्थों का प्रणेता मानते हैं। इनमें से अद्यावधि सब को मुद्रण का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। देव के हमने बारह ग्रन्थ देखे हैं और इन्हीं के सम्बन्ध में हम अपना मत प्रकट करेंगे। देव के मुद्रित ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है:—

(१) भाव विलास (२) अष्टयाम (३) भवानी विलास (४) रस विलास (५) सुखसागर तरंग (६) सुजान चरित (७) राग रत्नाकर (८) प्रेम चंद्रिका (९) देव शतक (१०) जाति विलास। इनके अतिरिक्त 'काव्य रसायन' या 'शब्द रसायन' 'कुशल विलास' 'देव माया प्रपञ्च नाटक' 'पावस विलास' 'वृक्ष विलास' आदि ग्रन्थों का उल्लेख मिश्र बन्धुओं ने अपने विनोद में किया है परन्तु इन्हें अद्यावधि मुद्रण का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। इसे हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य ही कहना चाहिये। 'कुशल विलास' अभी हिन्दुस्तानी अकेडमी में रक्खा हुआ है।

इसके अतिरिक्त देव के तीन संग्रह निकल चुके हैं। सबसे पहले भारतेन्दु बाबू ने "सुन्दरी सिन्दूर" के नाम से एक संग्रह निकाला जिसमें देवजी के १११ परमोत्कृष्ट छन्दों का संग्रह किया गया। दूसरा संग्रह 'देव ग्रन्थावली' और तीसरा संग्रह "देव सुधा" के नाम से मिश्र बन्धुओं ने प्रकाशित कराया। इसमें २७२ परमोत्कृष्ट छन्दों का संग्रह किया गया है। चौथा संग्रह हमारे मित्र बाबू हरदयाल सिंह ने "देव दर्शन" के नाम से तैयार किया।

प्रस्तुत संग्रह में देव की सभी रचनाओं से २०० चुटीले छन्द छांट लिये गये हैं। इस संग्रह के जल्दी जल्दी प्रकाशित होने से इस बात का अनुमान किया जाता है कि अब देव की रचनाओं की ओर हिन्दी-साहित्यानुरागियों का विशेष प्रेम है।

"भाव विलास"

यह देवजी की प्रथम रचना है। इसका प्रणयन आपने सोलह वर्ष की अवस्था में सम्वत् १७४६ में किया था। इसके देखने से विदित होता है कि देव की बाल्यकाल की रचनाओं में भी पर्याप्त प्रौढ़ता थी। इसमें आपने शृंगार रस का प्राधान्य रक्खा है और नायिका भेद और अलंकारों का भी वर्णन किया है। इसमें देव ने अपनी विशेषता दिखलाई है। जहाँ अन्य आचार्य्यों ने ३३ सचारी भावों का वर्णन किया है वहाँ आपने एक "छल" नाम का संचारी और बढ़ाकर उनकी संख्या ३४ कर दी है। इसी प्रकार रस के भी आप ने दो भेद किये हैं लौकिक और अलौकिक · फिर इनके भी उपभेद किये हैं। लौकिक के शृंगार हास्य आदिक नौ भेद और अलौकिक के तीन भेद, 'स्वप्न, मनोरथ और उपनायक'। शृंगार के भी आपने 'प्रच्छन्न और प्रकाश' दो भेद किये हैं। इसमें आपने केशवदास की प्रणाली का अनुसरण किया है। नायिकाओं के आपने ३०४ भेद माने हैं। यद्यपि बाबू जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' ने इनकी संख्या हजारों पर पहुँचा दी है। देव ने ३९ ही अलङ्कारों का समर्थन किया है। सम्भव है कि इससे पहले के आचार्य्य इतने ही अलङ्कारों के अस्तित्व के समर्थक हों।

"अष्टयाम"

यह देव जी की द्वितीय कृति है। इसकी रचना औरङ्गजेब के पुत्र आजम शाह के लिये सम्वत् १७४६ में की गई थी। और उन्होंने इसको बहुत पसन्द भी किया था। ऋतुओं पर लिखने की परिपाटी बहुत पुरानी है पर देव जी ने ऋतुओं की कौन कहे प्रत्येक पहर और घड़ी पर छन्द कहे हैं। कहना न होगा कि यह तत्कालीन राजाओं के मनोविनोद का बिलासप्रिय टाइम टेबुल है। समझ में नहीं आता कि

इन लोगों के सामने उन दिनों विलासता को छोड़कर कोई अन्य कार्य्य-क्रम था या नहीं।

"भवानी विलास"

यह देव जी की तीसरी रचना है और भवानीदास वैश्य के नाम पर की गई है। इसका विषय 'रस निरूपता' है।

"सुजान विनोद"

इसमें देव जी ने प्रेम को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। उनका अनुमान है कि जप-तप भी इसकी अपेक्षा हीन हैं। इसमें 'उद्धव गोपिका' संवाद के विषय में कुछ छन्द कहे गये हैं और षटऋतु का वर्णन अच्छा किया गया है।

"प्रेम तरंग"

यह भी नायिका भेद का ग्रन्थ है और इसकी रचना बड़ी प्रशंसनीय है।

"राग रत्नाकर"

इसका विषय संगीत है। रागों के विषय में जितनी भी ज्ञातव्य बातें हैं वे सब इसमें दी गई हैं। 'स रे ग म प ध नी' के संकेत के लिये देव ने गुप्त रूप से 'सुरंगमे प्योधनी' का प्रयोग किया है। निष्कर्ष यह कि संगीत सागर को उन्होंने इस ग्रन्थ रूपी गागर में भर-कर अपनी सांगीत कुशलता का परिचय दिया है।

"कुशल विलास"

इसका विषय नायिका भेद है और यह इटावा मंडलान्तर्गत फफूँद निवासी ठाकुर शुभकरणसिंह के पुत्र कुशलसिंह के नाम पर बनाया गया है। इसकी भी रचना सुन्दर है।

"प्रेम चन्द्रिका"

इसकी रचना मर्दनसिंह के पुत्र उद्योगसिंह वैश्य के नाम पर की गई थी इसका भी विषय रस निरूपण हैं और शृङ्गार रस को विशेषता दी गई है। इसका रसराजत्व देवजी ने भली भांति प्रतिदान किया है।

"देव चरित्र"

इसमें भगवान कृष्ण की ललित लीलाओं का वर्णन किया गया है। इसके पढ़ने से विदित होता है कि देव को पर्य्याप्त पौराणिक परिज्ञान भी था और यदि वह चाहते तो इसे सुन्दर खण्ड काव्य बना सकते थे पर न जाने क्यों उन्होंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया।

"जाति विलास"

इसमें देवजी ने भारतवर्ष के समस्त देशों की भिन्न भिन्न जाति की ललनाओं का चित्र खींचा है और यह अपने ठाठ का निराला ग्रन्थ है।

"रस विलास"

इसकी रचना राजा भोगीलाल के लिये सम्वत् १७८३ में की गई थी। इसमें अष्टांगवती नायिकाओं का वर्णन है।

"शब्द रसायन या काव्य रसायन"

यह ग्रन्थ देव की आचार्य्यता का परिचायक है। इसमें पदार्थ निर्णय और रसों तथा अलङ्कारों पर बहुत अच्छी तरह से, विचार किया गया है और छन्दों पर भी प्रकाश डाला गया है।

"सुखसागर तरंग"

यह देव का सब से बड़ा ग्रन्थ है और यह पिहानी निवासी अकबर अली खाँ के लिये बनाया गया था। इसमें विभिन्न विषयों पर सब मिलाकर ८२० छन्द हैं।

"देव माया प्रपञ्च नाटक"

यह 'प्रबन्ध चन्द्रोदय' नाटक के समान एक अर्ध विकसित नाटक है। यह नाटक की किसी कसौटी पर नहीं कसा जा सका इसलिये इसे नाटक कहना भूल है।

"वृक्ष विलास और पावस विलास"

ये छोटी छोटी सी पुस्तकायें हैं और इनमें क्रमशः वृक्षों और पावसों का वर्णन है।

"देव शतक"

यह जयपुर से निकला है और इसकी रचना साधारण है।

अन्त में सब मिलाकर देव की रचनाओं के सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि इनमें अधिकांश उत्कृष्ट हैं। देव की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। काव्य के सारे गुण इनकी रचनाओं में उपलब्ध हैं। कल्पनायें बड़ी ही उच्चकोटि की हैं। उपमाओं में मौलिकता है। इनके सभी ग्रन्थों में समान छन्द पाये जाते हैं। क्योंकि वे काव्य के भिन्न भिन्न अंगों के उदाहरण में उपस्थित किये गये हैं। अन्य कवियों के भावों का भी देव ने हृदय से स्वागत किया है।

देव-रत्नावली

(१)

जादव वृद्ध जौ लेन पठाए,
त तौ धनु गोधपु ले सबु जैयै।
या लरिकाहि कहा करिहै नृप,
गोप-समूह सबै सँग हैयै॥
तौ ही लौं जीवनु मो ब्रज जौ लागि,
खेलतु साथ लिए बल भैयै।
सर्वसु कंसु हरौ न अभै किन,
आँखिनु ओट करौ न कन्हैयै॥

(२)

जाके न काम, न क्रोध, बिरोध न,
लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहीं।
मोह न जाहि रहै जग-बाहिर,
मोल जवाहिर तौ अति चाहीं॥
बानीं पुनीत ज्यौं 'देव' धुनी रस,
आरद सारद के गुन गाहीं।
सील-ससी, सविता-छविता,
कबिताहि रचै, कवि ताहि सराहीं॥

धनु – द्रव्य। गोधनु—गायें। अभै—वेखटके। जग-बाहिर—कोत्तर। पुनीत—पवित्र। धुनी—गंगा।

(७)

गूजरी ऊजरे जोवन कों कछु,
मोल कहौ दधि को तब देहौं।
'देव' इतो इतराहु नहीं,
इनहीं मृदु बोल न मोल बिकैहौं॥
मोल कहा, अनमोल बिकाहुगी,
ऐंचि जबै घघरा-रसु लैहौं।
कैसी कही फिरि तौ कहौ कान्ह,
अबै कछू हौंहू कका कि सौं कैहौं॥

(८)

आजु अबै सुघरी उघरी भ्रम,
काज-निमित्त सुचित्त चलाकिन।
चाहत नाह चलो परदेस कों,
नाहक नाह कह्यौ अबला किन॥
'देव' सयोग परी सगुनै कहि,
कामिनि दामिनि सोन-सलाकिन।
झूमि गरी घनलागिनि भूमि पै,
घूमि रही घन-पान्ति बलाकिन॥

अनलाग—बिना बादलों की। नाह—पति। अबला—स्त्री। सोन सलाकिन—सोने की सलाई। बलाकिन—बगुलों की पंक्तियाँ।

(६)

फूले अनारन पांडुर डारन,
देखत 'देव' महाडरु मांचैं।
माधुरी भौंरन अंब के वौरन,
भौंरन के गन मंत्र से वांचैं॥
लागि उड़ैं विरहागिन की,
कचनारन बीच अचानक आचैं।
सांचे हुंकारि पुकारि पिकी कहैं,
नाच बनैगी बसन्त की पांचैं॥

(१०)

कछु और उपाय करैं जनि री,
इतने दुख क्यों सुख सों भरिवी।
फिरि अंतक सों विन कंत वसंत के,
आवत जीवित ही जरिवी॥
वन वौरत वौरी ह्वै जाउगी 'देव'
सुने धुनि कोकिल की डरिवी।
जब डोलिहैं औरैं अबीर भरी,
सुहहा कहि वीर कहा करिवी॥

पांडुर—पीला। भौंरन—समूह। असंक—रोंव दाव।
त—पति। वीर—सखी।

राधिका-सी सुर-सिद्ध-सुता,
नर-नाग-सुता 'कविदेव' न भू पर।
चन्द करौं मुख देखि निछावरि,
केहरि कोटि लटौ कटि हू पर॥
काम-कमान हू को भृकुटीन पै,
मीन मृगीन हू को दृग दू पर।
वारौंरी कंचन-कंज-कली,
पिकबैनी के ओछे उरोजन ऊपर॥

(१२)

कंचन जोति चढ़ी चपला,
सुर-चाप सुभ्रू रुचि कज्जल काढ़ी।
बूँद बढ़े बरसैं अँसुवा,
हिरदै न बसैं निरदै पति जाढ़ी॥
'देव' समीर नही दुनिए,
धुनिए सुनिए कलकंठ निनाढ़ी।
नारि भुलै न चिरी बमुनी,

(१३)

अंत रुकै नहिं अंतरु कै,
मिलि अंतरु कै सु निरंतरु धारै।
ऊपर चाहि न ऊपर चाहित,
ऊपर बाहिर की गति चारै॥
बातन हारति बात न हारति,
हारति जीभ न बातन हारै।
'देव' रंगी सुरत्यौ सुरत्यौ मनु,
देवर की सुरत्यौ न बिसारै॥

(१४)

पूरन प्रेम सुधा बसुधा,
ऊसुधारमई बसुधार सु रेखी।
जीवन या ब्रज जीवन की,
ब्रज जीवन जीवनमूरि बिसेखी॥
तू परमावधि रूप रमा,
परमानद को परमानँद पेखी।
नेह भरी नख ते सिख 'देव',
सुदेह धरे ससि मूरति देखी॥

'अंत रुकै नहिं'—और कहीं नहीं ठहरती। रंगी—प्रीति। सुरत्यौ—सूरत। बसुधारमई—ज्योतिपूर्ण। ब्रज जीवन—भगवान कृष्ण। परमावधि—चरम सीमा। पेखी—देखकर।

(१५)

ईंगुर-सों रँग एड़िन बीच,
भरी अँगुरी अति कोमलतायनि।
चन्दन-बिन्दु मनौ दमकै नख,
'देव' चुनी चमकैं ज्यों सुभायनि॥
बन्दत नन्दकुमार तिहारेई
राधे वधू ब्रज की ठकुरायनि।
नूपुर संजुत मञ्जु मनोहर,
जावक-रंजित कंज से पायनि॥

(१६)

आपुस में रस में रहसैं,
बहसैं बनि राधिका कुंजबिहारी।
स्यामा सराहति स्याम की पागहि,
स्याम सराहत स्यामा की सारी॥
एकहि आरसी देखि कहैं तिय,
नी लगीं पिय त्यौं कहै प्यारी।
'देवजू' बालम बाल को बाद,
बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी॥

जावक रंजित—महावर लगा हुआ। आरसी—दर्पण।
बहसैं—तर्क। बालम बाद—झगड़े।

(१७)

पीछे तिरीछे कटाछन सौं,
इत वै चितवैं री लला ललचौहैं।
चौगुनो चाव चवायनि के चित,
चाह चढ़े हैं चवाउ मचौ हैं॥
जोबन आयो न पाप लग्यो,
'कवि देव' रहैं गुरु लोग रिसौहैं।
जी मै लजैए जुजैए कहूँ,
तित पैये कलंक चितैए जु सौहैं॥

(१८)

साँकरी खोरि बखोरि हमैं,
किन खोरि लगाय खिसैबो करौ कोइ।
हारेहु हाय नही करिहैं हिय,
घायन लोन घिसैबो करौ कोइ॥
'देवजू' धीर धरो सुधरो किन,
ओठनि दंत पिसैबो करौ कोइ।
रूप हमैं दरसैबो करौ,
अरसैबो करौ कि रिसैबो करौ कोइ॥

चवाउ—अपवाद। रिसौहैं—क्रोधित। चितैए जु सौहैं—सामने देखैं। साँकरी खोरि—तङ्ग रास्ता। बखोरि—कोंचकर—अपराध। घायन लोन घिसैबो—घाव में निमक डालना।

(१६)

पहिले सतराय रिसाय सखी,
जदुराय पै पाय गहाइए तौ।
फिरि भेंटि भट्ट भरि अंक निसंक,
घड़े छिन लौं उर लाइए तौ॥
अपनो दुख औरन को उपहास,
सबै 'कवि देव' बताइए तौ।
घनस्यामहिं नेकहुं एक घरी को,
इहाँ लगि जो करि पाइए तौ॥

(२०)

जागत हू सपने न तज्यौं,
अपनेई अयानपन को अँध्यारो।
क्यों हूँ छिपात छिपी न छिनौं,
निसि देह हिये हुलि 'देव' उज्यारो॥
नैनन ने निचुरयो पै नेह,
कान्ह है के नैनन को न पन्यारो।
दूरि रह्यो छिन जीवन-मूरि,
सु पूरि रह्यो प्रतिबिम्ब ज्यों प्यारो॥

(२१)

मैं समुझायो नहीं समुझै,
मन को अपनो अपमान न सूझै।
मोहन मान करै तौ गरे परि,
'देव' मनैवे को जाइ, अरूझै॥
काको भयो सब सों बिगरो यह,
जाको मरै सु तौ बात न बूझै।
सौति हमारी सो प्यारे की प्यारी,
ता प्यारे के प्यार परोसि सौं जूझै॥

(२२)

घोर लगै घर बाहिरहू डर,
नूत न भूत दवागि जरे-से।
रंगित भीतिन भीत लगै,
लखि रंगमही रनरंग डरे-से॥
धूम घटागर धूपन की,
निकसे नवजालन व्याल भरे-से।
जो गिरि-कंदर-से मन-मन्दिर,
आज अहो उजरे उजरे-से॥

गरेपरि—बरवश। अरूझै—उलझना। जूझै—लड़ै। दवागि—वनाग्नि। रङ्गमहीं—रङ्गभूमि। गिरि-कन्दर—पर्वत कन्दरा। मनि-मन्दिर—मणि जड़ित सौध। उजरे—श्वेत। उजरे—उजड़े हुये।

(२३)

खोरि लौं खेलन आवतीयै न,
तौ आलिन के मत मैं परती क्यौं।
'देव' गुपालहि देखतीयै न,
तौ या बिरहानल मैं बरती क्यौं॥
माधुरी मंजुल अम्ब की डालि,
सुभालि-सी ह्वै उर मैं अरती क्यौं।
कोमल कूकि कै कोकिल कूर,
करेजनि की किरचैं करती क्यौं॥

(२४)

पूतना को पय पान कर्‍यो,
मनु पूत-नाते बिसवास बगाहत।
'देव' कहा कहौं मातु-पिता-हित,
बंधुन को हित नीके निबाहत॥
कारे हौ कान्ह बिकारे हौ कौन,
कहौ गुन कौन पै औगुन चाहत।
पन्नग की मनि आनिहौ तुम्हैं,
तुम पन्नग की चितुनी कियो चाहत॥

(२५)

राधे कही है कि ते छमियो,
ब्रजनाथ जिते अपराध किए मैं।
कानन तान न भूलत ना खिन,
आँखिन रूप अनूप पिए मैं॥
ओछे हिये अपने दिन-राति,
दयानिधि 'देव' बसाय लिये मैं।
हौंहूँ असाधु बसी न कहूं पल,
आधु अगाधु तिहारे हिए मैं॥

(२६)

केती न नागरि नौल-बधू,
तुम ही गुन-आगरि आई न गौने।
'देव' सकोचनि सोचति क्यों,
मृग-लोचनि लोचनि ह्वै ललचौने॥
पी को पियूष सखी सुर-रूख ते,
दूखत सूखत या मुख मौने।
मान के मन्दर रूप-समुन्दर,
इन्दु से सुन्दर सील सलौने॥

नाखिन—क्षणमात्र भी नहीं भूलती। आधु—थोड़ी देर के लिये भी। अगाधु—गम्भीर। नौल-बधू—नई बहू। इन्दु—चन्द्रमा।

(२७)

चोरी लगै चहूं ओर चितौतु,
कलङ्क लगै मग मैं पगु दै री।
दंतनि दाबि रहौ अँगुरी,
अँगुरी कहुँ अंकु जु पै उघरै री॥
'देव' दुरे रहिए हँसिए नहिं,
बैरिनि बैस किए जग बैरी।
जौन घिरे रहिए घर मैं तो,
घने घिरि आवत हैं घर घेरी॥

(२८)

प्रान-से प्रानपती सों निरन्तर,
अन्तर अन्तर पारत है री।
'देव' कहा कहौं बाहिर हूँ घर,
बाहिर है री भीतर भैरी॥
लाज न लागति लाज अहै तोहि,
जानी मैं लाज अकाजिनि तेरी।
देखन दे हरि को भरि नैन,
घरी छिन छाड़ि अलीकिनि तेरी॥

(२९)

तीनिहू लोक नचावति ऊक मैं,
मंत्र के सूत अभूत गती है।
आपु महा गुनवन्त गुसाइनि,
पायनि पूजत प्रानपती है॥
पैनी चितौनि चलावति चेटक,
को न कियो बस योगि-जती है।
कामरू-कामिनि काम-कला,
जग-मोहनि भामिनि भानमती है॥

(३०)

एंड़िन ऊपर घूमत घाँघरो,
तैसिए सोहति सालू की सारी।
हाथ हरी-हरी छाजै छरी,
अरु जूती चढ़ी पग फूँद फुँदारी॥
ऊँचे उरोज हरा घुंघुचीन के,
हाँ कहि हाँकति पैल निहारी।
गात नहीं दिखराय बटोहिन,
बातन हीं बनिजै बनिजारी॥

अकमैं—जादू, उलका। कामरू-कामिनि—कामरूप देश की स्त्री। भानमती—जादूगरनी। बटोहिन—राहगीरों को। बनिजै—व्यापार करती है। बनिजारी—बनजारे की स्त्री।

(३१)

तीर परयो जु गहीर गुहा,
गिरि धीर धरयो सु अधीर महा हैं।
पूँछती पीर भरें दृग नीर,
त्यौं एकै समीर करैं औ सराहैं ॥
छोर भिजै एक पोंछती चीर लै,
राधे रहैं तिरछी करि छाहैं।
मेटती भीर अहीरन की,
पर बीरज को बलबीर की बाहैं ॥

(३२)

को नृप कै सुरराज भयो,
[illegible] जीति [illegible] ।
मेरु नहीं मैं मही करि कै,
[illegible] कुबेर को जीति [illegible] ॥
पाप न पुन्य न [illegible] न [illegible],
[illegible] सुमिरे [illegible] जीति [illegible] ।
[illegible] ह्वै [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] ॥

[illegible] — [illegible] । [illegible] — [illegible] । [illegible] — [illegible] है।
[illegible] — [illegible] ।

(३३)

बाग्यो बन्यो जरतार को तामहिं,
ओस को हार तन्यो मकरी ने।
पानी मैं पाहन-पोत चल्यो चढ़ि,
कागद की छतुरी सिर दीने॥
काँख मैं बाँधि कै पाँख पतंग के,
'देव' सुसंग पतंग को लीने।
मोम के मन्दिर माखन को मुनि,
बैठ्यो हुतासन आसन कीने॥

(३४)

गंग तरंगिनि बीच बरंगिनि,
ठाढ़ी करैं जपु रूप उदोती।
'देव' दिवाकर की किरनैं,
निकसैं विकसै मुख-पंकज जोती॥
नीर भरी निचुरैं अलकैं,
छुटि कै छलकैं मनो माँग ते मोती।
बिज्जुलि-से झलकैं लपटे कन,
कज्जल-से अङ्ग उज्जल धोती॥

वरङ्गनि—अच्छे गात्रों वाली। रूप उदोती—जिसका रूप चमक है। दिवाकर—सूर्य्य।

(३५)

सारस न भूख न भूखन की सुधि,
भाय सु भूखन सों उपजावै ।
'देव' इकंतहि कंतति के गुन,
गावति नाचति नेह मजावै ॥
प्रेम-भरी पुलकै मुलकै उर,
व्याकुल कै कुल-लोक लजावै ।
लै परवी परवी न गनै,
कर बीन लिए परवीन बजावै ॥

(३६)

ग्रीषम हू पहरी मिस जोन्ह,
महाहिम न्हानन सों परिवेठी ।
फेनन दूध पियै हू पियूष,
अनूप मयूष निसा मधुऐंठी ॥
'देव', दुराय [illegible] सों [illegible],
[illegible] के [illegible] आनि लपेटी ।
[illegible]
[illegible] ।

[illegible] — [illegible] । [illegible] — [illegible] । [illegible] —
[illegible] । [illegible] । [illegible] — [illegible] ।

(३७)

कातिक पूनो कि राति ससी,
दिसि पूरब अंबर मैं जिय जान्यो।
चित्त भ्रम्यो पुमनिन्दु मनिन्दु,
फनिन्दु उठ्यो भ्रम ही सों भुलान्यो॥
'देव' कछू विसवास नहीं,
सोइ पुञ्ज प्रकास अकास मैं तान्यो।
रूप-सुधा अँखियान अँचै,
निहिचै मुख राधिका को पहिचान्यो॥

(३८)

नाचत मोर, नचावत चातिक,
गावत दादुर आरभटी मैं।
कोकिल की किलकार सुने,
बिरही बपुरे विस घूंटै घटी मैं॥
अंबर नील घनी घनमाल सु,
भूमि बनी बनमाल तटी मैं।
सांवर पीत मिले झलकैं
घन दामिनि से घन स्याम पटी मैं॥

फनिन्दु—सर्प। पुञ्ज प्रकास—उजाली का समूह। आरभटी—
त विशेष। बिरही बपुरे विष घूँटै घटी मैं—बिरही का असह्य वेदना
ती है। अंबर—आकाश।

(३९)

आइ बसंत लग्यो बरसावन,
नैनन से सरिता उमहैं री।
को लगि जीव छपावै छपा मैं,
छपाकर की छवि छाई रहै री॥
चन्दन सों छिरकैं छतियाँ,
अति आगि उठै उर कौन सहै री
सीतल, मंद सुगंध, समीर,
बढ़ै, दिन दूनो देह दही री

(४०)

लोनी लसैं, उरसैं कुच ऊँचे,
[illegible] कंचुकीन की [illegible]
हँसै हुलसैं [illegible]
[illegible]

(४१)

परिहास कियो हरि 'देव' सुजान को,
वा मुख बैन नच्यो नट ज्यों।
करि तीछी कटाच्छ कृपान भयो,
मन पूरन रोप भर्‌यो भट ज्यों ॥
लपिटाय गही खट-पाटी करौंट लै,
मान-महोदधि को तट ज्यों।
कटु बोल सुने पटुता मुख को,
पट लै पलटी उलट्यौ पट ज्यों ॥

(४२) /

खंजन मीन मृगीन की छोनी,
हगंचल चंचलता निमिखा की।
'देव' मयंक के अंक को पंक,
निसंक लै कज्जल-लीक लिखा की ॥
कान्ह बसी अँखियान बिपै,
विसफूरति बीस बिसे बिसिखा की।
दीपति मैन-महीप लिखाई,
समीप सिखा गहि दीप-सिखा की ॥

खट-पाटी—खाट की पाटी। मान-महोदधि—मान-रूपी समुद्र
मेखा की—थोड़ी देर के लिये। मयंक—चन्द्रमा। बिसिखा की—
। मैन-महीप—काम नरेश। दीप-सिखा—दीपक की जोति।

(४३)

कानन कोनन कूदि फिरैं,
करि सौतिन के उर खेत की खूँदनि ।
'देव जू' दौरि मिले ढिग ज्यौं मृग,
जे न फँदे फँदवार के फूँदनि ॥
घूंघट के घुटकी नटिकी,
सुछुटी लटकी लटकी गुन गूँदनि ।
केहू कहूं न छुरै बिछुरै,
बिचरै न चुरै निचुरै जल बूँदनि ॥

(४४)

माथे मनोहर मौर लसै,
पहिरे हिय में गहिरे गुंजहारनि ।
कुंडल मंडित गोल कपोल,
सुधा-सम बोल बिलोल निहारनि ॥
सोहति त्यों कटि पीत पटी,
मन मोहति मंद महा पग धारनि ।
सुन्दर नन्दकुमार के ऊपर,
वारिए कोटिक मार-कुमारनि ॥

(४५)

औंड़ी चितौनि कहूँ चढ़ि लागती,
वंदन आड़ जो आड़े न होती।
डारतो गूँदि गुमान गयंदु जो,
गोल कपोलनि गाड़ न होती॥
लूटती लोकुलटैं सफुलेल,
हमेल हिये भुज हाड़ न होती।
चंदु अचानक च्वै परतो,
मुख-चंदु पैं जो चित चाड़ न होती॥

(४६)

सारसी सारस हंसिनी हंस,
चकोरी चकोर मिले सुख लूटैं।
'देव' चितै चकई चकवा,
बिछुरे निसि के बिस-घूंट-से घूटैं॥
केते कपोत मृगी। मृग री,
युग जीवैं न जो युग योग तें फूटैं॥
फूली लता रस के बस दौरत,
भौंर के भारन डार न टूटैं॥

चितौनि—दृष्टि। वंदन आड़े—वंदन की रेखा। आड़े न—सामने ी। गयंद—हाथी। सफुलेल—तेल लगी हुई। चाड़—गहरी विष-घूंट-से घूटैं—दारुण यातना पाये।

(४७)

जेठी बड़ी ते अमेंठसि भौंहनि,
रूक्ष महा मन सूछम सीछैं।
'देव जू' बातनि ही सों हितौति सी,
सौति सखी सु चितौति तिरीछैं॥
लाज की आँचनि या चित राच,
न नाच नचाइहौं नेह न छीछैं।
चाह भरी फिरौं या चित मेरे,
कि छाँह भई फिरौं नाह के पीछैं॥

(४८)

काहू की कोई कहावति हौं,
नहिं जाति न पाँति न जाते खसौंगी।
मेरियै हास करौ किन लोग हौ,
को 'कवि देव जू' काहि हसौंगी॥
गोकुलचंद की चेरी चकोरी हौं.
मंद हँसी मृदु फंद फँसौंगी।
मेरी न बात बकौ बलि छोड़ हौ,
बावरी हौं ब्रज-बास बसौंगी॥

अमेंठसि भौंहनि—तनी हुई भौंहें। चितौति—देखते हुए। नाह—पति। खसौंगी—गिरूँगी। गोकुलचन्द की चेरी—भगवान कृष्ण की दासी। बावरी—पागल।

(४९)

जागत जागत, खीन भई,
अब लागत संग सखीन को भारो।
खेलिबोऊ हसिबोऊ कहा,
सुख सों बसिबो बिसे बीस बिसारो॥
तो सुधि दौस गवावति 'देव जू'
जामिनि जाम मनौ जुग चारौ।
नीरज-नैन निहारिए नैनन,
धीरज राखत ध्यान तिहारो॥

(५०)

उठी अकुलाय सुनी जब नेक,
कथा परवीन लला ब्रजराज
बिसारि दई 'कवि देव' तुम्हैं,
अवलोकत ही अब लोक की लाज॥
इते पर और चवाव चल्यौ,
बरजै घर जे गुरु लोग समाज।
कहाँ लगि लाल कछू कहिए,
इतनी सहिए सब रावरे काज॥

खीन—दुबली। बिसे बीस बिसारो—हर तरह से छोड़ दिया। दौस गंवावति—दिन बिताती है। जामिनि जाम—रात की घड़ियाँ। नेक—थोड़ा सा। अवलोकत—देखते ही। लोक की लाज—कुल की मर्य्यादा। बरजै—मना करै।

(५१)

आँखि मिहीचनि खेलत मोहि,
दुहु विधि सोच कहूँ नटि जाइ न।
चोर ह्वै सोर कैं नंदकिसोर री,
जाइ छिपै पै कहूँ सटि जाइ न॥
नैन-मिहीचौं छुपै उनके,
तजि लाज सनेह कहूँ परि जाइ न।
नाथ हा! हाथ सरोज से मेरे,
करेरे कटाच्छ कहूँ कटि जाइ न॥

(५२)

आई नहीं तन में तरुनाई,
भई नहीं स्याम के संग सँयोगिनि।
कौने सिखाई धौं सीख कहा,
सुमिरै धरि ध्यान मनो जुग जोगिनि॥
भोजन बास न हास विलास,
उमास भरे मनो दीरघ रोगिनि।
आँखिन तें अँसुआ नहि सूखत,
एकहि बार ह्वै बैठी बियोगिनि॥

सटि जाइ—दुबक जाना। मिहींचौं—बंद करें। तरुनाई—जवानी। सीख—शिक्षा। सुमिरै—याद करै। जुग जोगिनि—वृद्धा योगिनी।

(५३)

वे बतियाँ छतियाँ लहकैं,
दहकैं बिरहागिनि की उर आँचें।
वा बँसुरी को परयो रसु री,
इन कानन मोहन मंत्र-से माचैं॥
को लगि ध्यान धरे मुनि लौं,
रहिए कहिए गुन वेद से बाचैं।
सूझत ना सखि आन कछू,
निसि-द्यौस वई अँखियान मैं नाचैं॥

(५४)

मंजुल मंजरी पंजरी सी ह्वै,
मनोज के ओज सम्हारति चीर न।
भूख न प्यास न नींद परे,
परी प्रेम अजीरन के जुर जीरन॥
'देव' घरी-पल जात घुरीं,
अँसुवान के नीर उसास-समीरन।
आहन जाति अहीर अहे,
तुम्हैं कान्ह कहा कहौं काहू की पीर न॥

दहकैं—प्रज्वलित। मनोज के ओज—काम का वेग। प्रेम अजीरन—प्रेम का आधिक्य। आहन—कठोर।

(५५)

काल्हि ही साँझ उड़्यो कर माझ,
ते 'देव' खरो तब ते उर साल्यो।
एक भली भई बाग तिहारे ही,
श्रीफल औ कदली चढ़ि हाल्यो॥
वंचक चित्रनि चंचु चुभायब,
कुब्ज के पिंजर मैं गहि घाल्यो।
हौं सुकहूँ नहि राखि सकी,
सुकहूँ सुन्यो तैंही परोसिनि पाल्यो॥

(५६)

इन्द्र ज्यों राज कुबेर ज्यों संपत्ति,
त्यों दृग दीपति लाज भरे री।
बालक बान दै धीरज पानि दै,
अंजन सान दै क्यों निदरे री॥
गोकुल मैं कुल तो कुल पै,
कछु उज्जल तो-से सुभाय भरे री।
इंदु मैं आगि पियूष मैं ज्यों विष,
'देव' त्यों तो मुख बात करे री॥

वंचक चित्रनि—धोखा देनेवाला। घाल्यो—डालता है। सुकहूँ—तोता, [illegible]। धीरज—[illegible]। कुल—समूह। इंदु—चन्द्रमा। पियूष—अमृत। बात करेरी—कटु वचन।

(५७)

बारियै बैस बड़ी चतुरे हौ,
बड़े गुन 'देव' बड़ौऐ बनाई।
सुन्दरै हौ सुघरै हौं सलोनी हौ,
सील भरी रस रूप सनाई॥
राजबहू बलि राजकुमारि,
अहो सुकुमारि न मानौ मनाई।
नैसुक नाह के नेह बिना,
चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई॥

(५८)

प्रानपती के प्रभात पयान,
प्रभाकर कोटि हुतो प्रतिकूल-सों।
रैहैं क्यों प्रान प्रलै पहिले दिन,
दूसरौ दौस दसा दुख-मूल सों॥
नेह रच्यो बिरहागि तच्यो,
प्रिय प्रेम पच्यौ पजरै तन तूल-सो।
सासनि दूखि उसासनि रूखि,
गयो मुख सूखि गुलाब के फूल सौ॥

(५९)

आजु गई हुती कुंजन लौं,
बरसै उत बुंद घने घन घोरत।
'देव' कहै हरि भीजत देखि,
अचानक आइ गए चित चोरत॥
पोंटि भटू तट ओट अटी कै,
लपेटि पटी सों कटी पटु छोरत।
चौगुनो रंग चढ़्यो चित मैं,
चुनरी के चुचात लला के निचोरत॥

(६०)

'देव' दिखावति कंचन-सो तन,
औरन को मन तावै अगोनी।
सुन्दरि साँचे मैं दै भरि काढ़ी-सि,
आपने हाथ गढ़ी बिधि सोनी॥
सोहति चूनरि स्याम किसोरी कि,
गोरी गुमान भरी गज-गौनी।
कुन्दन लीक कसौटी मैं लेखियत,
देखी सु नारि सुजानि सलोनी॥

पोंटि—मुस्करा कर। भटू—सखी। कटी पटु छोरत—धोती खोलते। साँचे—तराशा है। अगोनी—जो गौने नहीं गई। आपने हाथ गढ़ी बिधि सोनी—[illegible]। गज-गौनी—हाथी के समान मस्त चलने वाली।

(६१)

वटु ह्वै नटु ह्वै कै रिझावै जिन्हैं,

हरि, 'देव' कहैं वतियाँ तुतरी।

विधि ईस के सीस वसी वहु वारन,

कोटि कला रज-सिंधु तरी॥

जगमोहनि राधे तू पाँइ परों,

वृषभान के भौन अभै उतरी।

गुन वाँधे नचावति तीनहुं लोक,

लिए कर ज्यों कर की पुतरी॥

(६२)

मूढ़ि कहैं मरि कै फिरि पाइए,

ह्याँ जु लटाइए भौन भरे को।

ते खल खोइ खिस्यात खरे,

अवतार सुन्यो कहुं छार परे को॥

जीवत तौ व्रत भूख सुखौत,

सरीर महा सुर रूख हरे को।

ऐसी असाधु असाधुन की वुद्धि,

साधन देत सराध मरे को॥

वटु—ब्रह्मचारी, वावन। नटु—नटवर कृष्ण। जिन्हैं—राधिका को। विधि—ब्रह्मा। ईस के सीस—महादेव के मस्तक पर। रजसिंधु-समुद्र की राज्य स्त्री।

(६३)

है अभिमान तजे सनमान,
बृथा अभिमान को मान वहैए।
'देव' दया करै सेवक जानि,
सुसील सुभाय सलोनी लहैए॥
को सुनि कै बिन मोल बिकाय न,
बोलन कोइ को मोल न हैए।
पैए असीस लचैये जो सीस,
लची रहिए तब ऊँची कहैए॥

(६४)

निसि बासर सात रसातल लौं,
सरसात घने घन बंधन नाख्यौ।
ब्रज गोकुल ऊ ब्रज गोकुल ऊपर,
ज्यों परज्यो परनो गुन भाख्यौ॥
करुना कर त्यों बर बैन लियो,
करुना करि कै बरजैं अभिलाख्यौ।
मुरकौ न कहूँ मुर कौ रिपु री,
अँगुरी न मुरी अँगुरी पर राख्यौ॥

सलोनी—सुन्दर। नाख्यो—उल्लंघन किया। ब्रज गोकुल—ब्रज में रहने वाली गायें। ब्रज गोकुल—ब्रज मंडल और गोकुल ग्राम। बर बैन लियो—[illegible]। मुरकौ—हटा। मुरको रिपु री—भगवान कृष्ण। अँगुरी न मुरी—ज़रा भी नहीं हटाया।

(६५)

पीर पराई सों पीरो भयो मुख,
दीननि के दुख देखे बिलाती।
भीजि रही करुना करुनारस,
काल कि केलिनु सों कुम्हिलाती॥
लै-लै उसासन आँसुन सों,
उमगै सरिता भरि कै ढरि जाती।
नाव लौं नैन भरे उछरैं,
जल ऊपर ही पुतरी उतराती॥

(६६)

सीय के भाग के अच्छत अंकुर,
पुन्यनि के फल-फूल कढ़ाए।
भूपन की मुख ओप मृगम्मद,
चंदन मंद हँसीन बढ़ाए॥
'देव' विधीस के जान के ईस,
मुनीसन आससि-मन्त्र पढ़ाए।
श्रीरघुनाथ के हाथन पै,
मृगनैननि नैन-सरोज चढ़ाए॥

बिलाती—दबी जाती, गली जाती। करुना—दया करना। अच्छत—न नाश होने वाला। मृगम्मद- कस्तूरी। विधीस—ब्रह्मा और शङ्कर। ईश—रामचन्द्र।

(७१)

पीक-भरी पलकैं झलकैं,
अलकैं जु गड़ी सु लसैं भुज खोज की
छाय रही छबि छैल की छाती मैं,
छाप बनी कहुँ ओछे उरोज की ॥
ताहि चितै बड़री अँखियान तें,
तीकी चितौनि चली अति ओज की ।
बालम ओर बिलोकि कै बाल,
दई मनो चोट सनाल सरोज की ॥

(७२)

रूप के मंदिर तो मुख मैं,
मनि-दीपक से दृग द्वै अनुकूले ।
दर्पन में मनि, मीन सलील,
सुधाधर नील सरोज-से फूले ॥
'देव जू' सूरमुखी मृदु फूल के,
भीतर भौंर मनौं भ्रम भूले ।
अंक मयंकज के दल पंकज,
पंकज में मनों पंकज फूले ॥

खोज की—दर्शनीय । सनाल सरोज—जल सहित कमल । सुधाधर—चन्द्रमा । सूरमुखी—सूरजमुखी फूल । मयंकज—बुध ।

(७३)

धार में धाइ धँसी निराधार ह्वै
जाय फँसी उकसीं न अबेरी।
री अँगराइ गिरीं गहिरी गहि,
फेरे फिरीं न घिरीं नहि घेरी॥
'देव' कछू अपनो बसु ना'
रसु लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेगिहि बूड़ि गईं पखियाँ,
अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी॥

(७४)

बानर, बीर बसाए अटा,
रग मन्दिर मैं सुक सार्‍यो चिरैया।
मोर लौं ऊखल भौर अथायन,
द्वार न कोऊ किवार भिरैया॥
कौलौं घिरे घर मैं रहौं 'देव'
बछा बिछुरे कहौं कौन घिरैया।
फूले न बाग समूले न मूले,
ऊ सूले खरे उर फूले फिरैया॥

धार—प्रेम प्रवाह। निरधार—निरवलम्ब। उकसी—फिर निकलना। अथायन—बैठकों में। घिरे—बैठे रहें। घिरैया—लौटाने वाला।

(७५)

अंबर नील मिली कवरी,
मुकुता-कर दामिनि-सी दसहूँ दिसि।
ता सधि माथे में हीरा गुह्यो,
सुगयो गड़ि केसन को छबि सों लिसि॥
माँग के मूल बनो सिर फूल,
दब्यौ झमकै कनकावलि सों घिसि।
शृंग सुमेरु मिले रवि-चन्द,
ज्यों पावस मास अमावस की निसि॥

(७६)

पहिले सुनि राख्यो हो आस्यो सखी,
रस चाख्यो अचानक कानपुटी।
नखि चित्र-चरित्र लख्यो सपने,
अब तौ खिन आँखिन आँखि जुटी॥
उमग्यो मनु 'देव' लग्यो पुन सों,
गुरु बंधुनि को धन-रासि लुटी।
कुलकानि की गाँठि तें छूट्यो हियो,
हिय तें कुल-कानि की गाँठि छुटी॥

अम्बर नील—नीला वस्त्र। कवरी—केश कलाप। लिसि—मिल-कर। कानपुटी—कानों में। पनु सों—परस।

(७७)

जीव सों जीवन, जीवन सों धन,
सो धन जीवित नाथ निबोधौ।
या चित की गति ईठ की ईंठिलौं,
ईठ की डीठि अनीठ लौं सोधौ॥
या मनमोहन को वह मोहन,
सोहन सुन्दर रूप बिरोधौ।
या जिय मैं पिय मूरति है,
पिय मूरति 'देव' सुमूरति कोधौ॥

(७८)

'देव' मैं सीस बसायौ सनेह कै,
भाल मृगम्मद-बिंदु कै भाख्यौ।
कंचुकी मैं चुपर्‌यो करि चोवा,
लगाय लियो उर सों अभिलाख्यौ॥
लै मखतूल गुहे गहने,
रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यौ।
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं,
नैननि को कजरा करि राख्यौ॥

सोधौ—ठीक करो। बिरोधौ—अटकी हुई। कोधौ—और। मृग-

(७९)

दिना दस यौबन जोबन री,
मरिए पचि होइ जुपै मरिबे न।
सबै जग जानत 'देव' सुहाग की,
संपति भौन रही मरिबे न॥
कहा कियो सौति कहाय कै काहू,
लरौ पिय लोभ तऊ लरिबे न।
असीसन हू को सही करिबे,
न कछु अब सोहि रही करिबे न॥

(८०)

कान्हमई वृषभानु-सुता भई,
प्रीति नई उनई जिय जैसी।
जानै को 'देव' बिकानीसि डोलै,
लगै गुरु लोगन देखे अनैसी॥
ज्यौं ज्यौं सखी बहरावति बातन,
त्यौं त्यौं बकै वह बावरी-ऐसी।
राधिका प्यारी हमारी सौं तू कहि,
काल्हि की बेनु बजाइ मैं कैसी॥

मरिए पचि—परेशान होना। बिकानी सी डोलै—मुग्ध होकर घूमना। अनैसी—बुरी।

(८१)

ए अपनी करनी किन देखत,
'देव' कहौं न बनाइ कछू मैं।
घायल ह्वै करसायल ज्यौं मृग,
त्यौं उतही अतुरायल घूमैं॥
मेटिबे को तन ताप दुहू भुज,
मेटिबे को झपटै झुकि झूमैं।
चित्र के मन्दिर मित्र तुम्हैं लखि,
चित्र की मूरति को मुख चूमैं॥

(८२)

जीभ कुजाति न नकु लजाति,
गनैं कुल-जाति न बाति बह्यो करै।
'देव' नयो हिय नेह लगाय,
बिदेह की आँचन देह दह्यो करै॥
जीव अजान न जानत जान,
जो मैन अयान के ध्यान रह्यो करै।
काहे को मेरो कहावत मेरो जु,
पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै॥

करसायल—कृष्णसार मृग। कुजाति—दुष्टा। बिदेह कीआँचन—ताप से। जान—ज्ञान। अयान—मूर्ख।

(८३)

सांसन ही सों समीर गयौ,
अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेजु गयो गुन लै अपनो,
अरु भूमि गई तनु की तनुता करि॥
'देव' जियै मिलिवे ही की आस,
कि आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि,
हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि॥

(८४)

आजु गोपालजु बाल वधू सँग,
नूतन नूतन कुंज बसे निसि।
जागर होत उजागर नैनन,
पाग पै पीरी पराग परी पिसि॥
चोज के चन्दन खोज खुले जहँ,
ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि।
बोलत बात लजात से जात हैं,
आए इतौत नितौत चहूँ दिसि॥

तेजु—अग्नि। तनुता—सूक्ष्मता। जागर—जागना। उजागर—प्रगट। चोज के—थोड़ा। इतौत—इधर उधर।

(८५)

केसरि सों उबटे सब अंग,
बड़े मुकुतान सों माँग सँवारी।
चारु सुचंपक-हार गरे,
अरु ओछे उरोजन की छवि न्यारी॥
हाथ सों हाथ गहे 'कवि देव जू'
साथ निहारे हों आज निहारी।
हाहा हमारी सौं साँची कहौ,
वह कौन ही छोहरी छीबरवारी॥

(८६)

गौने की चाल चली दुलही,
गुरु नारिन भूषन भेष बनाए।
सील सयान सबै सिखएरु,
सबै सुख सासरेहू के सुनाए॥
बोलियो बोल सदा अति कोमल,
जे मनभावन के मन भाए।
यों सुनि ओछे उरोजन पै,
अनुराग के अंकुर से उठि आए॥

छोहरी—कन्या। छीबरवारी—चूनरी ओढ़े। मनभावन—पति।
अनुराग—प्रेम।

(८७)

रावरे रूप लला ललचानी ये,
जागी न काहू बिकानि औ ऐसी।
है सतहान सताई लतौ तुम,
संगति ते उतरी उत तैसी॥
न्याव निबेरौ न हौ यह नेह कौ,
जानत हौ तुम हूँ हम जैसी।
देखिवे ही को भरौ सिसकी,
तिनते रिस की चरचा कहौ कैसी॥

(८८)

बूझै बड़े बाबा नंद को बस,
जसोमति माय को मायको बूझत।
बोलत बातैं बड़ी बन मैं,
मन मैं वृषभानु बबा सों अरूझत॥
'देव' दबी हम नेह के नात,
न तौ पुरिखा इन बातन बूझत।
जीभ सँभारि न काढ़त गारि हौ,
ग्वारि गँवारि हमै हरि बूझत॥

सतहानि—दुबली। भरौ सिसकी—रोती हो। मायको—नैहर। अरूझत—उलझना। पुरिखा—बड़े बूढ़े।

(८९)

आजु मिले बहुतै दिन भावते,
भेंटत भेंट कछू मुख भाखौ।
ये भुजभूषन मो भुज बाँधि,
भुजा भरि कै अधरा-रस चाखौ॥
लीजिए लाल उढ़ाय जरी पट,
कीजिए जू जिय जो अभिलाखौ।
प्यारे हमैं तुम्हें अंतर पारत,
हार उतारि इतै धरि राखौ॥

(९०)

माखन-सो मन दूध-सो जोवन,
है दधि ते अधिकै उर ईठी।
जा छवि आगे छपाकर छाछ,
विलोकि सुधा वसुधा सब सीठी॥
नैनन नेह चुवै कहि 'देव'
बुझावति बैन बियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहो।
कहा क्यों न लगै मनमोहनै मीठी॥

भुजभूषन—बाहु रूपी आभरण। ईठी—इष्ट। छपाकर—चन्द्रमा
छाछ—मठा। सीठी—निस्वाद।

(६१)

पायन नूपुर मंजु बजैं,
कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत,
हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल,
मंद हँसी मुख-चंद जुन्हाई।
जै जग-मन्दिर-दीपक सुन्दर,
श्री ब्रज दूलह 'देव' सहाई।

(६२)

हैं उपजे रज बीज ही ते,
बिनसे हू सबै छिति छार कै छाँड़े।
एक-से देखु कछु न बिसेख,
ज्यों एक उन्हार कुम्हार के भाँड़े॥
तापर ऊँच औ नीच बिचारि,
वृथा बकि बाद बढ़ावत चाँड़े।
वेदनि मूँदि कियो इन दूंदु,
कि सूदु अपावन पावन पाँड़े॥

बिसेख—निराला। एक उन्हार—एक समान। चाँड़े—अवहेलना करके। दूंदु—झगड़ा।

(६३)

जो कछु पुन्य अरन्य जल स्थल,

तीरथ खेत निकेत कहावै॥

[ज]जन-जाजन औ तप-दान,

अन्हान परिक्रम गान गनावै॥

[औ]र किते व्रत नेम उपास,

अरंभु कै 'देव' को दंभु दिखावै।

[ये] सिगरे परपंच के नाच,

जु पै मन मैं सुचि साँच न आवै॥

(६४)

[प]ावक मैं बसि आँच लगै न,

बिना छत खाँड़े कि धार पै धावै।

[स]ीत सों भीत, अभीत असीत सों,

दुक्ख सुखी, सुख मैं दुख पावै॥

[ज]ोगी ह्वै आठहू जाम जगै,

अठ जामिनि कामिनि सौं मनु लावै।

आगिलो पाछिलो सोचि सबै,

फल कृत्य करै तब भृत्य कहावै॥

[अर]न्य—वन। खेत—क्षेत्र। जाजन—यज्ञ करना उपास—व्रत

दंभु—मिथ्या अभिमान। बिना छत—बिना आघात के।

[खाँड़े क]ी धार—तलवार की धार। फल कृत्य—कार्य सम्पादन करे।

(६५)

मात ह्वै आपु जनी जगमात,
  कियौ पति तात सुतासुत जायो ।
ता उर माँह रमा ह्वै रमी,
  विधि वाम नरायन राम रमायो ॥
लोक तिहूँ जुग चारहु मैं जस,
  देखौ बिचारि हमारोई गायो ।
जौ हम सीस बसे रजनीस के,
  तौ वहि ईस लै सीस बसायो ॥

(६६)

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि,
  अंगनि ओप मनो उफनीं ।
'कवि देव' हिये सियरानी सवै,
  सियरानी को देखि सुहाग सनी ॥
वर धामनि वाम चढ़ी बरसैं,
  मुसुकानि सुधा घनसार घनी ।
सखियान के आनन-इंदुन तें,
  अँखियान की चंदनवार तनी ॥

जनी—उत्पन्न किया । जगमात—पार्वती । जायो—उत्पन्न कियो
रमा—लक्ष्मी । रजनीस—चंन्द्रमा । ओप—कान्ति प्रभा । सियरानी—
अभिमान जाता रहा । घनसार—कपूर ।

(६७)

स्याम के अंग सदा हम डोलैं,
जहाँ पिक बोलैं, अलीगन गुंजैं ।
लाहनि माह उछाहनि सों,
छहरैं जँह पीरी पराग की पुंजैं ॥
बेलनि मैं, रस केलनि मैं,
'कवि देव' कछू चित की गति लुंजैं ।
कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते,
फूलती मंजुल वंजुल कुंजैं ॥

(६८)

रच्यो कच मौर सुमोर पखा,
धरि काक-पखा मुख राखिअराल ।
धरी मुरली अधराध लै,
मुरली सुर लीन ह्वै 'देव' रसाल ॥
पितम्बर काछनी पीत पटी,
धरि बालस-वेष बनावति बाल ।
उरोजन खोज निवारन को,
उर पैन्ही सरोजमई मृदु माल ॥

लाहनि माह --सानन्द । पराग की पुंजैं--मकरन्द का समूह । लुंजैं---टूट जाना । मंजुल---कोमल, सुन्दर । वंजुल---अशोक । कच मौर---बालों का मुकुट । अराल---कुटिल । निवारन को---रोकने को ।

(९९)

भूलति ना वह भूलनि बाल की,
फूलनि-माल की लाल पटी की।
'देव' कहै लचकै कटि चंचल,
चोरो दृगंचल चाल नटी की॥
अंचल की फहरानि हिए रहि,
जानि पयोधर पीन तटी की।
किंकिनि की झननानि झुलावनि,
झूकनी सों झुकी जानी कटी की॥

(१००)

माधुरी मौरनि फूलनि भौंरनि,
बौरनि-बौरनि बेलि बची है।
केसरि किंसु कुसुंभ कुरौ,
किरवार कनैरनि रंग रची है॥
फूले अनारन चंपक-डारनि,
लै कचनारनि नेह तची है।
कोकिल रागनि नूत परागनि,
देखु री, बागनि फागु मची है॥

लचकै - हिलै, काँप जाय। दृगंचल--आँख का पपोटा। मौरनि--मञ्जरी। किंसु--[illegible]। किरवार--[illegible]। नेह तची- प्रेम में तप्त [illegible] हुई है। नूत--नये।

(१०१)

साँवरी सुन्दर पीत दुकूल सु,
फूले रसाल की मूल लसंती।
लीन्हें रसाल की मंजरी हाथ,
सुरंगित आँगी हिये हुलसंती॥
पूरन प्रेम सुरंग मैं प्योधनी,
संग ही संग विलोल हसंती।
है उत हैउत ही दिन माँझ,
समौ करि राख्यो वसंत बसंती॥

(१०२)

दूध सुधा, मधु, सिंधु गँभीर ते,
हीर जुपै नग-भीर लै आवै।
बाल, प्रवाल पला मिलिकैं,
मनि-मानिक मोतिन जोति जगावै॥
लै रजनीपति बीच बिरामनि,
दामिनि-दीप समीप दिखावै।
जो निज न्यारी उज्यारी करैं,
तब प्यारी के दंतन की दुति पावै॥

आँगी—कंचुकी। सुरंग मैं प्योधनी—सं० रे० गा० म० प० ध० नी०। हैउत—हेमन्त ऋतु। हीर- सार। नग भीर—रत्न प्रभा। बिरामनि—विराम चिह्न।

(१०३)

करि कोरि कला उलटैं पलटैं,
पल ही पल ज्यौं मृग बागरि के।
बहु ताको विलास बढ़ै चित-बाँस,
पै 'देव' सरूप उजागरि के॥
गति बंक निसंक ही नाच करैं,
गुर डोरि गहे गुन-आगरि के।
तब नेह लग्यो नट नागर सों,
अब नैन भये नटनागरि के॥

(१०४)

पीतम पेस विलास विसेस,
सविभ्रम भौंहनि जोहनि जोऊ।
रूप के भार धरै लघु भूषन,
औ विपरीत हँसे किन कोऊ॥
मैं रसरास हँसी रिस हू रस,
'देव जू' दुःख सुन्यो सम होऊ।
तोहि भटू बनि आवत है,
रस भाव सुभाव मे हाव दसोऊ॥

बागरि—जाल। गुर—गुटकुना। जोहनि—देखना।

(१०५)

सोधि सुधारि सुधाधरि 'देव'
रची नख ते सिख सुद्ध ससी-सी ।
सोने-से रंग, सलोने-से अंगन,
कौनै न नैन कसौटी कसी-सी ॥
ही के बुझैं सब ही के सँताप,
सु सौतिन को असराप असीसी ।
भावती ही हित ही की हितू भई,
आवती हौ अँखिआनि बसी-सी ॥

(१०६)

औचक ही चितई भरि लोचन,
वा रस के बस ह्वै चुकी चेरियै ।
मोहक मोहू पै हौं नहीं सूझत,
बूझत स्याम घने तम घेरियै ॥
आनन्द के मद के नद मैं,
मनु बूड़ि गयो हद मैं नहि हेरियै ।
कै उलटो सब लोक लगौ,
किधौं 'देव' करी उलटी मति मेरियै ॥

असराप—शाप । असीसी—आशीर्वाद । चेरियै—दासी ।

(१०७)

को कुल या ब्रजगोकुल दो कुल,
दीप-सिखा-सी ससी-सी रहीं भरि ।
त्यौं न तिन्हैं हरि हेरत री,
रँगराती न जो अँगराती गरे परि ॥
जो नवला नव इन्दु-कला,
ज्यौं लची परैं प्रेम रची पिय सों लरि ।
भेंटत देखि विसेखि हिए,
ब्रजभूभुज 'देव दुहूँ भुज सों भरि ॥

(१०८)

कंचन के कलसा कुच ऊँचे,
समीपहि मैन-महीप ठयो है ।
बाजी खिलाय कै बाल पनो,
अपनो पन लै सपनो सो भयो है ॥
'देव' कहा कहौं ठाकुर ईठ,
नयो दुार यो दुरयोग नयो है ।
जोबन पैठ में पैठत ही,
मान-मानिक गांठि ते ऐंठि लियो है ॥

रँगराती—प्रेम के मस्त । अँगराती—विषय वासना युक्त । गरे परि—हठात । ब्रजभूभुज—कृष्ण । मैन-महीप—कामदेव । ठयो है—ठहरा है । ठाकुर—स्वामी । दुरयोग—अप्रिय प्रसंग । गांठि ते—पास से ; ऐंठि लयो है—छीन लिया है ।

(१०९)

जे बिन देखे गये दिन बीति,
नये। पछिताऊ अरो हिए हैए।
'देव जू' देखि उन्हें हौं दुखी भई,
या जिय को दुख काहि दिखैए॥
देखे बिना दिखसाधन ही मरि,
देखु री देखत ही न अघैए।
देखत-देखत-देखत ही रहो,
आपनो देहौ न देखन पैए॥

(११०)

सुखसार सिवार सरोवर ते,
ससि सीस-बँधे बिधि के बल सों॥
चकई-चकवा तजि गंग-तरंग,
अनंग के जाल परे छल सों॥
कमलाकर ते कढ़ि कानन मैं,
कल हंस कलोलत हैं कल सों।
चढ़ि काम के धाम धुजा फहरात,
सुमीनन काम कहा जल सों॥

अरो—अड़ा हुआ। दिखसाधन ही मरि—देखने ही की इच्छा ख सहते रहें। सिवार—शैवाल। कमलाकर—सरोवर। —सुन्दर।

(१११)

चित दै चितऊँ जित ओर सखी,
तित नंदकिसोर कि ओर ठई।
दसहू दिसि दूसरी देखति ना,
छवि मोहन की छिति माँहि छई॥
'कवि देव' कहा लौं कछू कहिए,
प्रतिमूरति हौं उनहीं की भई।
ब्रजवासिन को ब्रज जानि परै,
न भयो ब्रज री ब्रजराजमई॥

(११२)

गोत-गुमान हनै इत प्रीति,
सुचाहनि-सी अँखियान पै खैंची।
छूटै न कानि दुहू कुलकानि की,
'देव जू' हौं दुहु ओर ते ऐंची॥
मोल लटी न हियो पलटी,
प्रगटी सुनिरन्तर अन्तर कैंची।
या मन मेरे अनैसे अजान है,
हौं नन्दलाल के हाथ लै बेंची॥

ठई—ठहर। प्रतिमूरति—बिल्कुल वैसी ही तसवीर। गोत-गुमान—वंश का गर्व। कानि—मर्यादा। मोल लटी—मोल के कारण हुआ। अन्तर कैंची—हृदय को कैंची। अनैसे—अनाड़ी।

(११३)

ना यदुनंद को मन्दिर है,
वृषभान को भौन कहा जकती हौ
हौंहीं कि ह्यां तुमहीं 'कवि देव जू',
काहि धौं घूंघट कै तकती हौ ॥
भेटती मोहि भटू किहिं कारन,
कौन की धौं छबि सों छकती हौ।
कैसी भई हौ कहौ किन कैसेहु,
कान्ह कहाँ हैं कहा बकती हौ ॥

(११४)

आए हौ पैन्हि प्रभात हिए पर,
जानि परै कछु जोति उज्यारी।
आरसी लै किन देखिए 'देव जू',
पाई कहाँ केहि नेह निहारी ॥
कै वनमाल किधौं मुकतावलि,
कँचन की कि रची रतनारी।
स्याम कहूँ, कहुं पीत, कहूँ सित,
लाल कहूँ उर-माल तिहारी ॥

ह्यां—यहाँ पर। भटू—सखी। नेह निहारी—प्रेम मई देखी है।

(११५)

नातो कहा तुम सों तुम को हौ,
जु कान्ह छुवो कछु अँग न वाको।
क्यों छुवैं अँग पै देखत हैं,
जु जराऊ तरौना मैं रूप रवा को॥
कौने कह्यौ तो बिजायठी बाँधन,
यों गिरि जानौ जु डोलत झवा को।
लाल परे लड़ नावरी बात हौं,
ढँग गनौंगी न नंद बबा को॥

(११६)

प्यारी हमारी सौं आवौ इतै,
'कवि देव' कु प्यारी है कैसेक एए।
प्यारी कहा मनि मोसों अहो,
कहि प्यारी प्यौ प्यार की प्यारी बुलैए।
कै वह प्यारु कै एतो कुप्यारु,
औ न्यारी ह्वै बैठि कै बात बनैए।
प्यारे पराये सों कौन परेखो,
गरे परि कौनहिं प्यारी कहैए।

तरौना—कर्ण फूल। रवा—एक रत्न। बिजायठी—अंगद। झवा—झब्बा। न्यारी ह्वै—अलग अलग। परेखो—उपालंभ। ढँग गनौंगी—कुछ भी न गिनौंगी;

(११७)

नेह लगाए निहोरे करावत,
नाहक नाह कहावत जैसे।
साथ के सँकत हाथ जरे,
घर कौन बुझावै मिले सब तैसे॥
वाहि न घूँघट को घट की सुधि,
अंग अनंग जरै पजरै-से।
क्यौं न गहै कर तू तिनके,
जिन की करतूतिन के फल ऐसे॥

(११८)

नारि जु बारिज-सी विकसी रहै,
प्रेमकली पिक-सी कल कूजै।
जा बड़ भाग के भौन बसी,
तेहि पीतम के चलिकै पग छूजै॥
और कहा कहिए तेहि द्वार की,
दासी ह्वै 'देव' उदास न हूजै।
आँखिन को सुख सुन्दरि को,
मुख देखत हू दिखसाध न पूजै॥

निहोरे—विनय। घट की—शरीर की। पजरै—प्रज्वलित। बारिज-सी—कमल सी। विकसी—खिली। कल कूजै—चहचहाना, मनोहर गान। दिखसाध—देखने की इच्छा।

(११६)

साँझ ही स्याम को लेन गई,
सु बसी बन में सब जामिनि जायकै।
सीरी बयारि छिदे अधरा,
उरझौ उर झाँखर झार मँझाय कै॥
तेरीसि को करि है करतूति,
हुति करिबे सुकरी तैं बनायकै।
भोर हीं आइ भट्ठ इत, मो,
दुखदाइनि काज इतो दुख पाइकै॥

(१२०)

पातरे अङ्ग उड़ै बिन पंखन,
कोयल-बानि चबानि बिरी की।
जोबन रूप अनूप निहारि कै,
लाज मरै निधिराज सिरी की॥
कौल से नैन, कलानिधि-सो मुख,
कोटि कला गुन की गहिरी की।
बाँस के सीस अकास पै नाचति,
को न छक्यौ छबि सोनचिरी की॥

छिदे अधरा—ओंठ फट गये। दुखदाइनि काज—दुख देनेवाली के लिये। कोयल-बानि—मीठी बोल। लाज मरै निधिराज सिरी की—लक्ष्मी की राज्य श्री उसके सामने लज्जित हो। सोनचिरी—नटिनी।

(१२१)

'देव' सुन्यो सब नाटक चाटक,
चाह उचाटन मन्त्र अतंक को।
वै तरुनी त्रिय के दृग-कोर ते,
और नहीं चित-चोर चमंक को॥
घूंघट ओट की आधिक चोट को,
सूल सम्हारै को मूल कलंक को।
छीछी छुवै किन छीछी छिसो वह,
तो बिसु बिस्व वसीकर बंक को॥

(१२२)

काम परयो दुलही अरु दूलह,
चाकर यार ते द्वार ही छूटै।
माया के बाजने बाजि गए,
परभात ही भातखवा उठि बूटे॥
आतसबाजी गई छिन में छुटि,
देखि अजौं उठि कै अँखि फूटे।
'देव' दिखैयन दाग बने रहे,
बाग बने ते बरोठेई लूटे॥

तरुनी त्रिय—जवान औरत। मूल कलंक—कलक का उद्गम।
छीछी—तुच्छ बेकार। उठि बूटे—चले गये। अंखि फूटे—अंधे से।
बरोठेई—पौर में।

(१३५)

आँखिन आँखि लगाए रहैं,
सुनिए धुनि कानन को सुखकारी।
'देव' रही हिय में घरु कै,
न सकै निसरै बिसरै न बिसारी॥
फूल मैं बास ज्यौं मूल सुबास को,
है फल फूल रही फुलवारी।
प्यारी उज्यारी हिये भरि पूरि है,
दूरि न जीवन-मूरि हमारी॥

(१३६)

पीर सही घर ही में रही,
'कवि देव' दियो नहिं दूतनि को दुख।
काहुक बात कही न सुनी,
मनु मारि बिसारि दियो सिगरो सुख॥
भीर मैं भूलि कहूँ सखि मैं,
जब ते ब्रजराज कि ओर कियो रुख।
मोहि भट्ट तब ते निसि-द्यौस,
चितौतिहि जात चवाइन के मुख॥

जीवन-मूरि—रहने का स्थान। चवाइन—बदनामी करने वाले।

(१३७)

स्याम सरूप घटा ज्यौं अनूपम,
नीलपटा तन राधे के झूमै।
राधे के अँग के रंग रंग्यो,
पट बीजुरी ज्यों घन सो तन-भूमै॥
है प्रतिमूरति दोऊ दुहू की,
बिधो प्रतिबिंब वही घट दूमै।
एकहि 'देव' दुदेह दुदेहरे,
देव दुधा यक देह दुहू मैं॥

(१३८)

लाल बुलाई हौ को हैं वे लाल,
न जानती हौ तौ सुखी रहिबो करि।
री सुख काहे को देखे बिना,
दिखसाधन ही जियरा न परो जरि॥
'देव' तौ जानि अजान क्यौं होति,
यही सुनि आँसुन नैन लिए भरि।
साँचे बुलाई बुलावन आई,
हहा कहि मोहिं कहा करिहैं हरि॥

अनूपम—अपूर्व, सुन्दर। दूमै—हिलैं। दिखसाधन—देखने की इच्छा। अजान—अज्ञान।

(१३९)

अरिकै वह आजु अकेले गई,
खरिकै हरि के गुन रूप लुही।
उनहूँ अपनो पहिराय हरा,
मुसक्यायकै गायकै गाय दुही॥
'कवि देव' कह्यो किन कोई कछू,
तब ते उनके अनुराग छुही।
सब ही सों यहै कहै बाल-बधू,
यह देखु री माल गुपाल गुही॥

(१४०)

सूधेहु नैन लखे न तबै,
अब पैए कहाँ जब चाहत हेरो।
कान करे नहिं कान तबै,
तकि कान लगे अकुलान घनेरो॥
लाजहिं जाइ मिले उतए,
इत मांहिं मिले मग मेटत मेरो।
मेटौं मनोरथ हौं इनको तौ,
मिटै मन मेरे मनोरथ तेरो॥

अरिकै—हठ करके। खरिकै—पशुशाला को। अनुराग—प्रेम

(१४१)

पून्यो प्रकास उदो उकसाइ कै,
आसहू पास बसाइ अमावस।
दै गए चित्त मैं सोच-विचार,
सु लै गए नींद छुधा बल बावस॥
है उत 'देव' बसंत सदा,
इत है उत है हिय-कंप महा बस।
दै सिसिरो निसि ग्रीषम के दिन,
आँखिन राखि गए रितु पावस॥

(१४२)

'देव' जुपै चित चाहिए नाह,
तौ नेह निबाहिए देह मर्यौ परै।
त्यों समुझाय सुझाइए राह,
अमारग जो पग धोखे धर्यौ परै॥
नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरौ कत,
ऊँची उसास गरो क्यों भर्यो परै।
रावरो रूप पियो अँखियान,
भर्यो सुभर्यो उबर्यो सुढर्यो परै॥

उदो—उदय। बावस—हठात। अमारग—बुरे रास्ते पर। रावरो—आपका। उबर्यो—निकला।

(१४३)

रावरे पायन ओट लसै पग,
गूजरी वार महावर ढारे।
सारी असावरी की झलकै,
छलकै छवि घाँघरे घूम घुमारे॥
आओ जू आओ दुराओ न मोहूँ सों,
'देव जू' चंद दुरै न अँध्यारे।
देखौं हौं कौन-सी छैल छिपाई,
तिरीछे हंसै वह पीछे तिहारे॥

(१४४)

ओठन ते उठि पीठि पै बैठि,
कंधान पै ऐंठि मुर्यो मुख मोरनि।
'देव' कटाच्छन ते कढ़ि कोप,
लिलार चढ़्यो बढ़ि भौंह मरोरनि॥
अंक में आये मयंकमुखी नई,
लाल को बंक चितै दृग-कोरनि।
आंसुन चूड़्यो उसास उड़्यो किधौं,
मान गयो हिलकी की हिलोरनि॥

गूजरी—अर्धांगनी व्रजवासिनी।

(१४५)

बैठी कहा धरि मौन भटू,
रँग भौन तुम्हें बिन लागत सूनौ।
चातक लौं तुमहीं रटि 'देव'
चकोर भयो चिनगी करि चूनौ॥
साँझ सुहाग की माँझ उदै करि,
सौति सरोजन को वन लूनौ।
पावस ते उठि कीजिए चैत,
अमावस से उठि कीजियै पूनौ॥

(१४६)

आई हौं देखि वधू इक 'देव'
सुदेखतै भूली सबै सुधि मेरी।
राख्यो न रूप कछू विधि के घर,
ल्याई है लूटि लुनाई की ढेरी॥
येई अबे वाहि ऐवे है बैस,
मरैंगी हराहरु घूंटि घनेरी।
जे-जे रानी गुन-आगरि नागरि,
ह्वै हैं ते ताके चितौत ही चेरी॥

मौन—चुपचाप। रंग भौन—केलि मन्दिर। लुनाई की ढेरी—सुन्दरता की ढेरी। हराहरु—भयंकर विष। चितौत ही—देखते ही।

(१४७)

कैधौं हमारियै वार बड़ौ भयो,
कै रबि को रथ ठौर ठयो है।
भोर ते भान की ओर चितौति,
घरी पल हू गन तौ न गयो है॥
आवत छोर नहीं छिन को,
दिन को नहिं तीसरो याम छयो है।
पाइये कैसेक साँझ तुरंतहि,
देखु री दौस दुरंत भयो है॥

(१४८)

खोरि में खेलत पीठि दिए,
तऊ नेह की डीठि छुटै नहिं छूठी।
'देव' दुहूँ को दुहू छल पायो,
सु कौलमुखी लखै नौल वधूटी॥
क्यों विसरैं निसरैं मन ते,
ब्रज जीवन की निजु जीवन-बूटी।
बाल के लाल लई चिहुँटी,
रिस के मिस लाल सों बाल चिहूँटी॥

ठयो है— रुक गया है। दुरंत— कठिन जिसका अन्त न हो। खोरि— गली। कौलमुखी— कमल वदनी। नौल वधूटी— नई दुलहिन। विसरैं— भूलें। ब्रज जीवन— कृष्ण। चिहुँटी— चिकोटी काटना। चिहूँटी— चिपट गई।

(१४९)

ज्यों बिन ही गुन अंक लिखै घुन,
यों करि कै करता कर झार्‌यो।
वारिए कोरि सची रति रानी,
इतो खटरानी को रूप निहार्‌यो॥
'देव' सुबानक देखि अचानक,
आनकहूँन को आनक मार्‌यो।
लाख लचै तिय आन रचै,
तौ पचै बिन काज बिरंचि बिचार्‌यो॥

(१५०)

'देव जू' या मन मेरे गयंद को,
रैनि रहीं दुख गाढ़ महा है।
प्रेम पुरातन मारग बीच,
टकी अटकी दृग सैल-सिला है॥
आँधी उसास नदी अँसुवान की,
बूड़्‌यो बटोही चलै बलुका ह्वै।
साहुनी ह्वै चित चोंति रही,
अरु पाहुनी ह्वै गई नींद बिदा ह्वै॥

करता—ब्रह्मा। कर झार्‌यो—हाथ फटकार डाले। वारिए—निछावर कीजिए। कोरि—खोद कर। सुबानक—अच्छा रूप बनाकर

(१५१)

तिल है अमोल लोल-नैनी के कपोल गोल,
बोलत अमोल जन बारि फेरियत है।
सोभा सुनी जाकी 'कविदेव' कहै कौन को न,
होत चित चीकनो चतुर चेरियत है॥
बाट बाट हू में घट निपट बटोहिन के,
नेक हू निहारे नेह-भरे हेरियत है।
सरस निदान ताके दरस की कौन कहै,
पौन हूँ के परसं परोसी पैरियत है॥

(१५२)

कंसरिपु अंस अवतारी जदुवंस कोइ,
कान्ह सो परमहंस कहै तौ कहा सरो।
हम तो निहारे ते निहारे व्रजवासिन मैं,
'देव' मुनि जाको पचि हारे निसि-बासरो॥
श्रम न हमारे जप संजम न करैं कछू,
बहि गयो जोग जमुना-जल-बिलासरो।
गोकुल गोसायनि परम सुख-दायनि,
श्रीराधा ठकुरायनि के पायनि को आसरो॥

लोल-नैनी—चंचल नेत्री। पचि हारे—परेशान हो गये।

(१५३)

ऊधो आए, ऊधो आए, स्याम को सँदेसो लाए,
सुनि गोपी-गोप धाइ धीर न धरत हैं।
पौरी लगि दौरी उठि भौरी लौं भ्रमति मति,
गनति न लाऊ गुरु लोगनि डरति हैं॥
ह्वै गई बिकल बाल बालम-बियोग भरीं,
जोग की सुनत बात गात यों जरत हैं।
भारी भए भूषन सँभारे न परत अंग,
आगे को धरत पग पाछे को परत हैं॥

(१५४)

उज्ज्वल उज्यारी-सी झलमलाति झीनी सारी,
झाँई-सी दिपति देह-दीपति बिसाल-सी।
जोवन की जोतिन सों, हीरालाल मोतिन सों,
नख ते सिखा लौं मिलि एकै ह्वै महा लसी॥
बोलनि हंसनि मंद चलनि चितौनि चारु—
ताई चतुराई चित चोरिबे की चाल-सी।
संग मैं सहेली सोन बेली-सी नवेली बाल,
रंगमगे अंग जगमगति मसाल-सी॥

भौरी—भ्रमरी। झीनी—बारीक। सोन बेल-सी—स्वर्ण बेल की तरह; जगमगति—झिलमिलाती हुई।

(१५५)

मोहिं तुम्हैं अँतरु गनैं न गुरुजन, तुम,
मेरे, हौं तुम्हारी, पै तऊ न पिघलत हौ।
पूरि रहे या तन मैं, मन मैं न आवत हौ,
पंच पूंछि देखे कहूँ काहू ना हिलत हौ॥
ऊँचे चढ़ि रोइ, कोइ देत न दिखाई 'देव',
गातनि की ओट बैठे बातनि गिलत हौ।
ऐसे निरमोही सदा मो हीं मैं बसत, अरु,
मोही ते निकरि फेरि मोहीं न मिलत हौ॥

(१५६)

जागी न जुन्हाई ज्वाल लागी है मनोभव की,
लोक तीनों हिये हेरि-हेरि हहरत हैं।
वारि पर परे जलजात जरि वरि-वरि,
वारिधि ते वाड़व अनल परसत हैं॥
धरनि ते लाइ भरि छूटी नभ-जाइ, कहै,
'देव' जाहि जीवत जगत हू जरत है।
तारे अनगारे-ऐसे चमकत चहूँ ओर,
वैरी विधु मंडल भभूका-सो भरत है॥

पिघलत—द्रवित होना। गिलत—लीलना। मनोभव—कामदेव। जलजात—कमल। वारिधि—समुद्र। वाड़व-अनल—एक प्रकार की अग्नि जो समुद्र में रहती है

(१५७)

चरननि चूमि, छ्वै छ्वानि ह्वै चकित 'देव'
झूमिकै दुकूलन न घूमि करि घटि गयो।
कोरे कर कमल करेरे कुच कंदुकनि,
खेलि खेलि कोमल कपोलननि पटि गयो॥
ऐसो मन मचला अचल अंग अंग पर,
लालच के काज लोक-लाजहि ते हटि गयो।
लटि मैं लटकि लोइननि मैं उलटि करि,
त्रिवली पलटि कटि-तटी माहि कटि गयो॥

(१५८)

नैननि में ठाढेई सुनावैं श्रवननि बैन,
बैन बसैं रसना हिए हू परसी मरौं।
देखौं न सुनौं बैन न बोलति मिलौं, न बिनु,
देखि-सुनि बोलि-मिलि आँसु बरसी मरौं॥
देखत दुखित सुनि सूखति बिलाति बोल,
मिलेहू मलिन ह्वै कै लाज सरसी मरौं।
एते पर देखिबे को, सुनिबो को बोलिबे को,
'देव' हिये खोलि मिलिबे को तरसी मरौं॥

छ्वानि—बिछुआ। दुकूलनि—वस्त्र। रसना—जिह्वा। बिलाति—गली जाती है।

(१५९)

कैसी कुल वधू, कुल कैसो, कुलवधू कौन,
तू है, यह कौन पूछै काहु कुलटाहि री।
कहा भयो तोहि कहा काहि तोहि मोहि कीधौं,
कीधौं और काहू और कहा न तौ काहि री॥
जाति ही सों जाति को है जाति कैसे जाति, एरी,
तोसों हौं रिसाति, मेरी मोसों न रिसाहि री।
लाज गहु, लाज गहु, लाज गहिबे ते रहौ,
पञ्च हँसिहैं री, हौं तौ पंचन ते बाहरी॥

(१६०)

एकै अभिलाख लाख-लाख भांति लेखियत,
देखियत दूसरो न 'देव' चराचर मैं।
जासों मनु रांचैं तासों तनु-मनु रांचैं, रुचि,
भरि कै उघरि जाँचैं साँचैं करि कर मैं॥
पांचन के आगे आंच लागे ते न लौटि जाय,
साच देइ प्यारे की सती लौं बैठि सर मैं।
प्रेम सो कहत कोई ठाकुर न ऐंठो सुनि,
बैठो गड़ि गहिरे तौ पैठो प्रेम-घर मैं॥

कुलवधू—सद्वंश की स्त्री। कुलटानि—चरित्रहीन स्त्री। लाज गहु—लज्जा करो। पंचन ते बाहरी—जाति से बाहर। रांचैं—अच्छा लगे। सर—तालाब।

(१६१)

पीछे परवीनैं बानैं संग की सहेली आगे,
भार डर भूषन डगर डारै छोरि-छोरि।
मोरै मुख मोरनि औ चौंकति चकोरनि त्यों,
भौंरनि की भीर भीरु देखै मुख मोरि-मोरि॥
एकै कर आली कर ऊपर ही धरे, हरे--
हरे पग धरै 'देव' चलै चित चोरि-चोरि।
दूजे हाथ साथ लै सुनावति बचन, राज
हंसनि चुनावति मुकुत-माल तोरि-तोरि॥

(१६२)

जगमगी जोतिन जड़ाऊ मन-मोतिन की,
चंद-मुख-मंडल पै मंडित किनारी-सी।
बेंदी बर बीरन गहीर नग हीरन की,
'देव' झमकनि में झमक भीर-भारी सी॥
अंग अंग उमड्यो परत रूप-रंग नव—
जोवन अनूपम उज्यास न उज्यारी-सी।
डगर-डगर बगरावति अगर अंग,
जगरमगर आपु आवति दिवारी-सी॥

भीरु—डरी हुई। मुकुत-माल—मोती की माला। गहीर—गहिरी।
उज्यास—प्रकाश उजालो। बगरावति—बिखेरती हुई।

(१६३)

फलि-फलि फूलि-फूलि फैलि-फैलि झुकि-झुकि,
झपकि-झपकि आई कुंजै चहुँ कोद ते।
हिलि-मिलि हेलिन कै केलिन करन गई,
बेलिन बिलोकि बधू ब्रज की बिनोद ते॥
नंद जू की पौरि पर ठाढे हैं रसिक 'देव'
मोहन जू मोहि लीनी मोहिनी वे मोद ते।
गाथन सुनत भूली साथन के फूल गिरे,
हाथन के हाथ ते, गोदन के गोद ते॥

(१६४)

आई बरसाने ते, बुलाई बृषभानु-सुता,
निरखि प्रभान प्रभा भानु की अथै गई।
चक-चकवान को चुकाए चक चोटन सों,
चकित चकोर चकचौंधा-सी चकै गई॥
नंदजू के नंदजू के नैननि अनंदमयी,
नंदजू के मंदिरन चंदमयी छै गई।
कंजन कलिनमयी, कुंजन अलिनमयी,
गोकुल की गलिन नलिनमयी कै गई॥

छै गई—छा गई; फैल गई। प्रभान—कान्ति को। चन्दमयी—प्रकाशमयी, नलिनमयी—कमलिनियों से युक्त।

(१६५)

घूँघट खुलत अबै उलटु है जैहैं 'देव'
उद्धत मनोज जग युद्ध जूटि परैगो।
ऐसी न सुरोक सिख को कहै अलोक बात,
लोक तिहुँ लोक की लुनाई लूटि परैगो॥
दैयन दुरावै मुख नतरु तरैयन को,
मंडलहु मटकि चटकि टूटि परैगो।
ते चितै संकोचि सोचिमोचि मृदु मूरछि कै,
छोर ते छपाकर छता-सी छूटि परैगो॥

(१६६)

फूँकि फूँकि मन्त्र मुरली के मुखजंत्र कीन्हो,
प्रेम परतंत्र लोक लीक ते छुलाई है।
तजे पति मात तात गात न सँभारे कुल,
वधू अधरात बन भूमिन भुलाई है॥
नाथ्यो जो फनिंद इन्द्रजालिक गोपाल गुन,
गाड्रू सिंगार रूपकला अकुलाई है।
लीलि लीलि लाज दृग मीलि-मीलि काढ़ी कान्ह,
कीलि-कीलि व्यालिनी-सी ग्वालिनी बुलाई है

मनोज—काम। अलोक—अपूर्व। तरैयन—तारे। छपाकर—चन्द्रमा। लोक लीक—वंश मर्यादा। इन्द्रजालिक—जादूगर ग्वालिनी—सखियाँ।

(१६३)

फलि-फलि फूलि-फूलि फैलि-फैलि झुकि-झुकि,
झपकि-झपकि आई कुंजैं चहुँ कोद ते।
हिलि-मिलि हेलिन कै केलिन करन गई,
बेलिन बिलोकि बधू ब्रज की बिनोद ते॥
नंद जू की पौरि पर ठाढ़े हैं रसिक 'देव'
मोहन जू मोहि लीनी मोहिनी के मोद ते।
गाथन सुनत भूली साथन के फूल गिरे,
हाथन के हाथ ते, गोदन के गोद ते॥

(१६४)

आई बरसाने ते, बुलाई वृषभानु-सुता,
निरखि प्रभान प्रभा भानु की अथै गई।
चक-चकवान को चुकाए चक चोटन सों,
चकित चकोर चकचौंधी-सी चकै गई॥
नंदजू के नंदजू के नैननि अनंदमयी,
नंदजू के मंदिरन चंदमयी छै गई।
कंजन कलिनमयी, कुंजन अलिनमयी,
गोकुल की गलिन नलिनमयी कै गई॥

[illegible]—बुलाकर : [illegible] । प्रभान—कान्ति की
चंदमयी—प्रकाशमयी , नलिनमयी—कमलिनियों से युक्त ।

(१६९)

गूढ़ वन सैल बूढ़े बैल को गहाई गैल,
भूतन चुरैल छैल छाके छबि ओज के।
भंग के न रंग दें भगीरथ को गंग हेत,
सग कटा राखत न राख तन खोज के॥
'देव' न बियोगी अब योगी ते सँयोगी भए,
भोगी भोग अंक परजंक चितचोज के।
ब्याल गज-खाल मुंड-माल औ डमरु डारि,
ह्वै रहे भ्रमर मुख सुन्दर सरोज के॥

(१७०)

एक होत इन्द्र, एक सूरज औ चन्द्र, एक,
होत है कुवेर कछु वेर देत नाया के।
अकुल कुलीन होत, पामर प्रवीन होत,
दीन होत चक्कवै चलत छत्र छाया के॥
संपति-समृद्धि, सिद्धि-निद्धि, बुद्धि बृद्धि सब,
भुक्ति मुक्ति पीर पर परि प्रभु जाया के।
एक ही कृपा-कटाक्ष कोटि यच्छ रच्छ नर,
पावैं घर वार दरबार देवमाया के॥

गहाइ गैल—रास्ते पर लाया। परजंक—पलंग। पामर—नीच
चक्कवै—चक्रवर्त्ती। प्रभु जाया—लक्ष्मी।

(१६७)

पावस प्रथम पिय ऐबे की अवधि सों जो,
आवत ही आवैं तो बुलाऊँ अति आदरनि।
नाहीं तो न हीज होन दै रे झीन झादरनि,
ग्रीषमहिं राखु लाली भाखु खल बादरनि।
बीजुरी बाजु, कहु मेघ न गरजु,
इन गाजमोर मोर-मुख मोरि री निरादरनि।
कंठ रोकि कोकिलनि, चोंच नोच चातकनि,
दूरि करि दादुर, बिदा करि री बादरनि॥

(१६८)

उर सों लगी हौं बधू बिधुर अधर चूमि,
मधुर सुधान बातें सुनिबे सुभाव की।
बोलि उठीं कोकिला त्यों काकलिनु कलित,
कलापिन की कूकैं कल कोमल बिराव की॥
आइ गई झूमैं मंद मारुत की 'देव' नव,
मल्लिका मिलित मल्ल पहुप के हाव की।
ऊजरी जुन्हाई गूढ़ अलिन मिलन लागीं,
पल्लिका के आस-पास कलिका गुलाब की॥

झादरनि—अनादर। बिदा करि री—हटा दे। काकलिनु-मधुर ध्वनि। बिराव की—कलशब्द। अलिन—भ्रमरों।

(१७३)

मोर मुकुट कटि पीत पटु कस्यौ, कैसी,
केसावलि ऊपर वदन सरदिन्दु के।
सुन्दर कपोलन पै कुंडल झूलत, सुर
मुरली मधुर मिले हाँसी रस बिन्दु के॥
माँगती सुहाग नाग-सुन्दरी सराहि भागु,
जोरे कर सरन चरन अरविन्दु के।
किंकिनी रटनि तालताननि तननि 'देव',
नाचत गुविंद फन फननि फनिन्दु के॥

(१७४)

उज्जल अखंड खंड सातएँ महल महा—
मंडल सँवारो चंद-मंडल को चोट ही।
भीतर ही लालनि के जालनि विसाल जोति,
बाहर जुन्हाई जगी जोतिन की जोट ही॥
बरनति बानी चौर ढारति भवानी, कर
जोरे रमा रानी ठाढ़ी रसन की ओट ही।
'देव' दिगपालनि की देवी सुखदायनि ते,
राधा ठकुरायनि के पायन पलोटही॥

केसावलि—केशपाश। सरदिंदु—शरदऋतु का चन्द्रमा। नाग-सुन्दरी—नागांगनायें। रटनि—झन्कार। फनिन्दु—सर्प। चोट ही—बढ़ कर। बानी—सरस्वती। रमा रानी—लक्ष्मी।

(१७१)

कथा मैं न, कंथा मैं न, तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं, न पाथ मैं, न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न, मुंडन न, तिलक त्रिपुंडन न,
नदी-कूप-कुंडन /अन्हात दान-रीति मैं।
पीठ-मठ-मंडल न, कुंडल कमंडल न,
माला-दंड मैं न, 'देव' देहरे की भीति मैं।
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो,
पाइए प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं॥

(१७२)

राखी न कलप तीनों काल विकलप मेटि,
कीनो संकलप, पै न दीनो जाचकनि जोखि।
नाग, नर, 'देव'-महिमा गनत नंद जू की,
माँगन जु आयो, सो न आँगन ते गयो रोखि।
दए सब सुख, गए वंदी न विमुख देव,
पितर अनन्दी भए नंदीमुख-मख पोखि।
वरनि-वरनि सुर-वरनि सराहैं सबै,
धरनि मैं धन्य नंदरानि तिहारी कोख॥

(१७३)

मुकुट कटि पीत पट्ट कस्यौ, कैसी,
केसावलि ऊपर वदन सरदिन्दु के।
दर कपोलन पै कुंडल हलत, सुर
मुरली मधुर मिलै हाँसी रस बिन्दु के॥
ाँगती सुहाग नाग-सुन्दरी सराहि भागु,
जोरे कर सरन चरन अरविन्दु के।
किंकिनी रटनि ताल ताननि तननि 'देव',
नाचत गुविंद फन फननि फनिन्दु के॥

(१७४)

उज्जल अखंड खंड सातएँ महल महा--
मंडल सँवारो चंद-मंडल की चोट ही।
भीतर ही लालनि के जालनि बिसाल जोति,
बाहर जुन्हाई जगी जोतिन की जोट ही॥
बरनति बानी चौर ढारति भवानी, कर
जोरे रमा रानी ठाढ़ी रमन की ओट ही।
'देव' दिगपालनि की देवी सुखदायनि ते,
राधा ठकुरायनि के पायन पलोटहीं॥

केसावलि—केशपाश। सरदिंदु—शरदऋतु का चन्द्रमा
सुन्दरी—नागांगनायें। रटनि—झन्कार। फनिन्दु—
बढ़ कर। बानी—सरस्वती। रमा रानी—लक्ष्मी।

(१७५)

आस-पास पूरन प्रकास के पगार सूझैं,
बनन अगार डीठ गली है निबरते।
पारावार पारद अपार दसौ दिसि बूड़ी,
चिघु बरम्हंड उतरात बिधि बरते॥
सारद जुन्हाई जह्नु पूरन सरूप धाई,
जाइ सुधा सिंधु नभ दिसि गिरि बर ते।
उमड़ो परत जोति मंडल अखंड सुधा,
मंडल मही में इन्दु-मण्डल बिबरते॥

(१७६)

सोखे सिन्धु सिन्धुर से, बंधुर ज्यों बिंध्य, गंध-
मादन के बंधु से गरज गुरवानि के।
झमकारे झूमत गगन को चूमत,
पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरवानि के॥
नदी-नद सागर डगर मिलि गए 'देव'
डगर न सूझत नगर पुरवानि के।
भारे [illegible] अँध्यारे धरनी-धरनि,
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के॥

पगार—[illegible] । पारद—पारा । अखंड—सम्पूर्ण । [illegible]
[illegible] । सिन्धुर—हाथी । गंधमादन—पर्वत का नाम । [illegible]
[illegible]

(१०७)

कालिंदी के कूलनि तरुनि तरु-मूलनि,
निहारि हरि अंग के दुकूलनि उघेरतीं।
मल्ली मलै मालती नेवारी जाती जूही 'देव'
अंबकुल बकुल कदंबन मैं हेरतीं॥
तार दै दै तालनि तमालनि मिलत फिरैं,
बोलि-बोलि बाल भुज भेंटि भट भेरतीं।
पुलकि-पुलकि पुलिननि मैं पुलोमजा सो,
बिलपि बिलोकि कान्ह-कान्ह करि टेरतीं॥

(१०८)

उमगत आवत सुधा-जल-जलधि पल,
घरी उघरत मुख अमिय मयूख सों।
'देव' दुहूँ बैस मिलि रूप अधिकायो, मधु,
मेलि दधि दूधहि मिलायो रस ऊख सो॥
छाई छबि छहरि लुनाई की लहरि लह-
रान्यो रस-मूल ह्वै रसाल सुर-रुख-सो।
पीवत ही जात दिन-राति तिन तोरि तोरि,
खिन-खिन सखिन की आँखिन पिऊख-सो॥

(१०९)

नीचे को निहारति नगीचे नैन अधर,
दुबीचे दुर्यो स्यामा अरुनाभा अटकन को।
नील मनि भाग ह्वै पदुमराग ह्वै कै,
पुखराग ह्वै रहत बिर्यो ह्वै निकट कन को॥

कालिंदी—यमुना। कूलनि—किनारों पर। दुकूलनि—वस्त्र। बकुल—मौलसिरी। पुलिननि—रेत में। पुलोमजा—इन्द्राणी। अमिय मयूख—अमृतमयी किरणें। तिन तोरि तोरि—डीठ न लगने का टोना। नगीचे—निकट।

'देवजू' हँसत दुति दंतन मुकुत जोति,
बिमल मुकत हीरा लाल गटकन को।
थिरकि-थिरकि थिरु थाने पर तान तोरि,
थाने बदलत नट मोती लटकन को॥

(१८०)

सरद के बारिद मैं इन्दु सो लसत 'देव'
सुन्दर बदन चाँदनी सो चारु चीर है।
सोधो सुधा-बिंदु मकरंद-सी मुकुत-माल,
लपटी मनोज तरु-मंजरी सरीर है॥
सील-भरी सलज सलोनी मृदु मुसुकानि,
राजै राजहंसगति गुनत गहीर है।
घेरी चहुँ ओरन तें भौंरन की भीर, तामें,
एरी चित्त चोरनि चकोरनि की भीर है॥

(१८१)

काम-गिरि-कुंड तें उठति धूम-सिखा कै,
छटक-चरनानी सारदा मैं पीन पंक की।
ललक ललक अंक-पाँति ज्यों कनक-पट,
बासन ससंक लंक लीनी रीति रंक की॥
सुन्दर उदर कै उदार निरै नाभी-कूप,
निरमानि मानें तहाँ पातक अतंक की।
रंचक बिलोकि तिन्हें चक [illegible] दीप, नैन-
बैना नौमि-मान-बैना ज्यों कलंक की॥

मकरंद—पुष्परस। मनोज—कामदेव। रंचक—थोड़ा। पंचक—
[illegible] [illegible] [illegible]—आधो मुद्री सीप का चन्द्रमा।

(१८२)

जाके मद मात्यौ सो उमात्यौ ना कहूँ है कोई,
बूड़्यो उछल्यौ ना तर्यौ सोभा-सिंधु सामुहै ।
पीवत ही जाहि कोई मर्यो, सो अमर भयो,
बौरान्यौ जगत जान्यौ मान्यो सुख-धामु है ॥
चख के चखक भरि चाखत ही जाहि फिरि,
चाख्यो ना पियूष कछु ऐसो अभिरामु है ।
दम्पति सरूप ब्रज औतर्यौ अनूप सोई,
'देव' कियो देखि प्रेम रस प्रेम नामु है ॥

(१८३)

साँझ को-सो चंद भोर को-सो करि राख्यो मुख,
भोर की-सी कांति भाँति साँझ की-सी भई आनि ।
साँझ भोर कोसो, नभ देखिये मलीन मन,
साँझ भोर चकवा चकोर की सी हित हानि ॥
कैसे करि कोसौं कासों कहौं कैसी करौं 'देव'
कीनी रिपुकेसी कैसे केसी की सुकेसी बानि ।
कैसी लाज कैसौ काज केसो धौं सखी समाज,
कैसौ घरु कैसौ बरु कैसौ डरु कैसी कानि ॥

(१८४)

बैठी सीस-मन्दिर मैं सुन्दरि सवार ही की,
मूँदि कै केवार 'देव' छवि सों छकति है ।
पीत-पट लकुट मुकुट बनमाल धारि,
भेष करि पी को प्रतिबिंब मैं तकति है ॥

चखक—मद्य का प्याला । रिपुकेसी कृष्ण । बानि—आदत । कानि—मर्यादा । सीस-मन्दिर—शीश महल । सवार—भोर ही से ।

होति न निसंक उर अंक भरि भेंटिबे को,
भुजन पसारति समेटति जकति है।
चौंकति चकति उचकति चितवति चहूँ,
झूमि ललचाति मुख चूमि न सकति है॥

(१८५)

दुहूँ मुख-चन्द ओर चितवैं चकोर दोऊ,
चितै-चितै चौगुनो चितैबो ललचात हैं।
हाँसनि हँसत बिन हाँसी बिहँसत मिलैं,
गातनि सों गात, बात बातनि में बात हैं॥
प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन,
पियत न खात नेक हूँ न अनखात हैं॥
देखि ना थकत देखि-देखि ना सकत 'देव'
देखिबे की घात देखि-देखि न अघात हैं॥

(१८६)

औचक अगाध सिन्धु स्याही को उमड़ि आयो,
तामें तीनों लोक बूड़ि गए एक संग में।
कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागर,
न्यारे करि बाँचैं कौन जाँचैं चित भंग में॥
आँखिन में तिमिर अमावस की रैनि जिमि,
जम्बुरस-बुंद जमुना-जल-तरंग में
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम-रंग में॥

[illegible]

(१८७)

केलि के बगीचे लौं अकेली अकुलाय आई,
नागरि नवेली बेली हेरत हहरि परी।
कुंज-पुंज तीर तहँ गुंजत भँवर-भीर,
सुखद समीर सीरे नीर की नहरि परी॥
'देव' तेहि काल गूंधि ल्याई माल मालिनि, सो
देखत बिरह-विष-व्याल की लहरि परी।
छोह-भरी छरी-सी छबीलीं छिति मोहि फूल-
छरी के छुअत फूल-छरी-सी छहरि परी॥

(१८८)

इभ से भिरत, चहुँधाइ सौं घिरत घन,
आवत फिरत झीने झरसों झपकि-झपकि।
सोरन मचावैं नचैं मोरन की पाँति चहुँ,
ओरन तें कौंधि जाति चपला लपकि-लपकि॥
बिन प्रान प्यारे प्रान न्यारे होत, 'देव' कहै
नैन बरुनीन रहे अँसुवा टपकि-टपकि।
रतियाँ अँधेरी, धीर न तिया धरति, मुख
बतिया कढ़ै न उठै छतियाँ तपकि-तपकि॥

(१८९)

मोहिं मैं छिपे हो माहि छुवावत न छाहीं तापै
छाँह भए डोलत इतै पै मोहिं छरिहौ।
मच्छ सुनि कच्छप बराह नरसिंह सुनि,
बावन परसुराम रावन के अरि हौ॥

भँवर-भीर—भ्रमरावली। बिरह-बिष-व्याल—बिरह रूपी विषैला नाग। इभ—हाथी। चपला—बिजली। बरुनीनि—आँख की पलकें। छरिहौ—छलोगे।

'देव' बलदेव देव-दानव न पावैं भेव,
को हौ जू कहौ जू जो हिये की पीर हरिहौ।
कहत पुकारे प्रभु करुना-निधान कान्ह,
कान मूंदि बैठे हौ कलंकी काहि करिहौ॥

(१६०)

कुंजनि के कोरे मन केलि रस बोरे लाल,
तालन के खोरे बाल आवति हैं नित को।
अनिय निचोरे रूप बोलनि निहोरे नेक,
सखिन के डोरे 'देव' डोलै चित-तित को॥
थोरे-थोरे जोबन बिथोरे देत रूप-रासि,
गोरे मुख भोरे हँसि जोरे लेति हित को।
तोरे लेति त्रिन दुति मोरे लेति गति-मति,
छोरे लेति लोक-लाज चोरे लेति चित को॥

(१६१)

खरी दुपहरी हरी भरी फरी कुंज मंजु,
गुंज अलि-पुंजनि की 'देव' हियो हरि जाति।
सीरे नद-नीर तरु सीतल गहीर छाँह,
सोवैं परे पथिक पुकारैं पिकी करि जाति॥
ऐसे मैं किसोरी भोरी गोरी कुम्हिलाने मुख,
पंकज से पाय [illegible] धीरज सों धरि जाति।
सोहैं घन स्याम [illegible],
[illegible] आनंद अलि जाति।

[illegible]

(१६२)

जौ न जीमैं प्रेम तव कीजै व्रत-नेम, जव
कंज-मुख भूलै तव संजम विसेखिए।
आस नहीं पीकी तव आसन ही बाँधियत,
सासन कै सासन को मूँदि पलि पेखिये॥
नख ते सिख लौं सव स्याममई बाम भई,
बाहर लौं भीतर न दूजो 'देव' देखिये।
जोग करि मिलैं जो वियोग होय बालम जू,
ह्याँ न हरि होय तव ध्यान धरि देखिये॥

(१६३)

जोवन के रंग भरी ईंगुर-से अंगनि पै,
एड़िन लौं आँगी छाजै छविन की भीर की।
उचके उचौहैं कुच झपे झलकत झीनी,
झिलमिली ओढ़नी किनारीदार चीर की॥
गुलगुले गोरे गोल कोमल कपोल, सुधा-
विंदु बोल इन्दु-मुखी नासिका ज्यों कीर की।
'देव' दुति लहरात छूटे छहरात केस,
बोरी जैसे केसर किसोरी कसमीर की॥

(१६४)

लागी प्रेम-डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढ़ी आनि,
नेह सों निहोरि जोरि आली मन मानती।
उतते उताल 'देव' आए नंदलाल, इत
सोहैं भई बाल नव लाल सुख सानती॥

पेखिये—देखिये। स्याममई—कृष्णमयी। इन्दु-मुखी—चन्द्र-वदनी। कीर की—तोते की। उताल—जल्दी।

कान्ह कह्यो टेरि कै कहाँ ते आई, को हौ तुम,
लागती हमारे जान कोई पहिचानती।
प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरि जू चलेई जाहु,
हमैं तुम जानत, तुम्हें हूँ हम जानती॥

(१६५)

गोकुल नरिन्द्र इन्द्रजाल सो जुटाय ब्रज-
बालनि लुटाय कै छुटाय लाज-दामु सों।
बिज्जुलि से बास अंग उज्जल अकास करि,
विविध विलास रस हास अभिरामु सों॥
जान्यो नहीं जात, पहिचान्यो न बिलात, रास-
मंडल ते स्याम, भासमंडल ते धामु सों।
बाहनि के जोट काम कंचन के कोट गयो,
ओट ह्वै दमोदर दुरोदर को दामु सों॥

(१६६)

फूलि उठो वृन्दावन, भूलि उठे खग, मृग
सूलि उठे, उर बिरहागि बगराई है।
गुंजरैं करत अलि-पुंज कुंज-कुंज धुनि,
मंजु पिक-पुंज नूत मंजुरी सुहाई है॥
बाल बनमाल फूल-माल विकसत विह-
संत मुखी ब्रज मैं बसंत-ऋतु आई है।
नंद के नंदन ब्रजचन्द को बदन देखे,
सदन-सदन 'देव' मदन दुहाई है॥

लाज-दामु—लाज की माला। अभिरामु—बिना रुके हुए। भास-मंडल—प्रभा मंडल। दुरोदर को दामु—जुआँ। बगराई—बखेर दिया। सदन—घर। मदन—कामदेव।

(१६७)

उतै तौ सघन घन घिरि कै गगन, इतै,
बन-उपवन बन बनक बनाए हैं।
वैसेई उलहि आए अंकुर हरित-पीत,
'देव' कहै विविध बटोहिन सुहाए हैं॥
बोलैं इत-मोर उत गरजैं मधुर धुनि,
मानौं मैन-भूप जग जीति घर आए हैं।
अंबर विराजै बर, अवरन छाये छिति,
पीरे, हरे, लाल, ये जवाहिर बिछाये हैं॥

(१६८)

अरुन उदोत सकरुन ह्वै अरुन नैन,
तरुन-तरुन तन तूमत फिरत है।
कुंज-कुंज केलि कै नवेली बाल बोलन सों,
नायक पवन बन झूमत फिरत है॥
अंबु-कुंल बकुल समीडि़ पीड़ि पाड़रनि,
मल्लिकानि मीड़ि घन घूमत फिरत है।
द्रुमन-द्रुमन दल दूमत मधुप 'देव'
सुमन-सुमन मुख चूमत फिरत है॥

(१६६)

ऐसो जु हौं जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ पाँय तेरे तोरतो।
आजु लौं हौं केते नरनाहन की नाही सुनि,
नेह सों निहारि हेरि बदन निहोरतो॥

मैन-भूप—कामदेव। मधुप—भ्रमर। नरनाहन—राजाओं को

चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चेतावनीन मारि मुंह मोरतो।
भरो प्रेम-पाथर नगारो दै, गरे सों बाँधि,
राधावर-बिरद के बारिधि मैं बोरतो॥

(२००)

कोयल अलापी कुल नाचत कलापी, ताल
बोलत बिसाल बोल चातक सुनायौ है।
दामिनीन बीच उपबीत गुन पीतपट,
मोतिन को हार बग-पाँति मन भायौ है॥
फूले मुख लोयन कमल कमलाकर,
मुकुट रवि जोति ताप बरषि सिरायौ है।
मोहै धुनि सरगमै बरषा पहर चौथे,
मेघ तनस्याम घनस्याम बनि आयौ है॥

(२०१)

कंत बिन बासर-बसंत लागे अंतक से,
तीर ऐसे त्रिबिध समीर लागे लहकन।
सान-धरे सार-से चंदन घनसार लागे,
खेद लागे खेर, मृगमद लागे महकन॥
फाँसी-से फुलेल लागे, गाँसी-से गुलाब अरु,
गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन।
अंग-अंग आगि-ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन, अबीर लागे दहकन॥

नगारो दै—डंका बजा कर। बारिधि—समुद्र। उपवीत—जनेऊ। बग-पाँति—बगुलों की कतार। कमलाकर—सरोवर। बासर—दिन। अंतक—यमराज। अरगजा—गुलाब जल में घिसा अगर, चन्दन, कपूर।

(२०२)

भाग सुहाग भरी अनुराग सों,
राधे जू मोहन को मुख जोवै।
भूषण भेष बनावैं नयें नित,
सौतिन के चित वंछित खोवै॥
रोधन गोधन पुञ्ज चरौ पय,
दास दुहैं दधि दासी बिलोवैं।
पूरन काम ह्वै आठहू जाम,
जु स्याम की सेज सदा सुख सोवैं॥

(२०३)

डोलति हैं यह काम लता सु,
लचीं कुच गुच्छ दुरूह उधा की।
कौल सनाल कि बाल क हाथ,
छिपी कटि कान्ति की भाँति सुधा की॥
'देव' यही मन आवति है,
सविलास बधू विधिहैं वसुधा की।
भाल गुही मुक्तालर मान,
सुधाधर मैं मनौ धार सुधा की॥

(२०४)

सबहीं के मनो मृग बागुरसे,
दृग मीनन को गुन जाल लियें।
बसुधा सुख सिन्धु सुधारसु पूरनु,
जात चले वृज की गलियें॥

अनुराग—प्रेम। जोवै—देखैं। चित वंछित—मनचाहा हुआ। ...वैं—मथैं। भाल—मस्तक। सुधाधर—चन्द्रमा। बागुर—...ी, बन्धन।

'कवि देव' कहें इहि भाँति उठी,
कहि काहू की कोइ कहूँ अलियें।
तबलों सब ही यह सोरु परो,
कि चलो चलिये जू चलौ चलियें ॥

(२०५)

जा दिन तें बृजनाथ भटू,
इह गोकुल तें मथुराहि गए हैं।
छाकि रही तब तें छवि सों छिन,
छूटनि ना छतिया में छए हैं ॥
वैसिय भाँति निहारति हौं हरि,
नाचत कालिन्दी कूल ठये हैं।
शत्रु सँहारि के छत्र धर्यो सिर,
देखत द्वारिकानाथ भये हैं ॥

(२०६)

बाल विलोकत ही झलको सी,
गुपाल गरै जलबिन्द की मालैं।
आपुस में मुसक्यानी सखी,
'हरि देव जू' बातें बनाइ बिसालैं ॥
साँप ज्यों पौन गिलै उगिलैं,
विषयों सब ऊपस आनि उगालैं।
जात घुस्यो घर ही में घने,
तपछीनु भयो तनुघाम के घालैं ॥

अलियें—सखियाँ। भटू—सखी। कूल—किनारा। शत्रु संहारि—बैरियों का वध करके। जलबिन्दु की मालैं—श्रम सीकर का समूह। बिसालै—बड़ी बड़ी।

(२०७)

एक तुही वृषभान सुता अरु,
तीनि हैं वे जु समेत सची हैं।
औरन केतिक राजन के,
कविराजन की रसनायैं तची हैं॥
देवी रमा 'कवि देव' उमा ये,
त्रिलोक मैं रूप की रासि मची हैं।
पै वर नारि महा सुकुमारि,
ये चारि बिरञ्चि विचारि रचीं हैं॥

(२०८)

गुन गौरि कियो गुरुमान सु मैन,
लला के हिये लहराइ उठ्यो।
मनुहारि के हारि सखी गुन औरँग,
भौनहिं ते भहराइ उठ्यो॥
तब लों चहुँधाई घटा छहराइ के,
विज्जु छटा छहराइ उठ्यो।
'कवि देव जू' भाग ते भामती कौ,
भय तें हियरा हहराइ उठ्यो॥

(२०९)

वैठी बहू गुरु लोगनि में,
लखि लाल गये करिके कछु औल्यो।
ना चितई न भई तिय चंचल,
'देव' इते उन तें चितु डोल्यो॥

सची—इन्द्राणी। रसनायैं—जीभें। बिरञ्चि—ब्रह्मा। भामती कौ—स्त्री का। चितई—देखा।

चातुर आतुर जानि उन्हें,
छल ही छल चाहि सखीन सों बोल्यो।
त्योंही निसङ्क मयङ्कमुखी,
दृग मूँदि कै घूंघट को पट खोल्यो॥

(२१०)

बेली नवेली लतानि सों केलि के,
प्रात अन्हाइ सरोवर पावन।
पिंजर मंजर को छहराइ,
रजक्षति छाइ छपाइ छपावन॥
सीतल मन्द सुगन्ध महा,
बपुरे बिरही बपुरी नित पावन।
आजु को आयो समीर सखीरी,
सरोज कँपाइ करेजो कँपावन॥

(२११)

'देव' यहै दिन राति कहै हरि,
कैसेहूँ राधे सों बात कहैबी।
केलि के कुंज अकेली मिलै,
कबहूँ भरि के भुज भेटिनु पैबी॥
आठहू सिद्धि नवोनिधि की निधि,
है बिरची विधि सन्निधि ऐबी।
मेटि वियोग समेटि हियो,
भरि भेंट कबै मुखचन्द चितैबी॥

आतुर—जल्दी करनेवाली। निसङ्क—बेखटके। मयङ्कमु॰ चन्द्रवदनी। बपुरे—तुच्छ। समीर—हवा। केलि के कुंज—स्थली, लतागृहों का समूह। सन्निधि—निकट।

(२१२)

आयो बसन्त लग्यो बरसाउन,
नैननि तें सरिता उमहै री।
कौ लगि जीव छिपावै छपा मैं,
छपाकर की छबि छाइ रहै री॥
चंदन सों छिरकैं छतियाँ,
अति आगि उठै दुख कौन सहैरी।
'देव जू' सीतल मन्द सुगन्ध,
सुगन्ध बहौ लगि देह दहै री॥

(२१३)

देखिबे कों जिनको दिन राति,
रहै उर में अति आतुर ह्वै हरि।
कीटि उपाइन पाइये जे न,
रहे जिनके बिरहाज्वर सों जरि॥
पार न पैयतु आनद को तिन,
आनि भट्ट उठि भेंटे भुजा भरि।
जानि परै नहिं 'देव' दया,
विष देत मिली विषया जु मया करि॥

(२१४)

बेली लसैं बिलसैं नव पल्लव,
फूल खिलैं न खिलैं नव कोरे।
मोरत मान कों गान अलीनि के,
कूक पिकी मुनि को मन भोरे॥

उमहै री—उमड़ कर बहने लगे। छपाकर—चन्द्रमा। सुगन्ध—हवा। बिलसैं—शोभायमान हों। पिकी—पपीहा।

डोलत पौन सुगन्ध चलै अरु,
मैन के बान सुगन्ध कों डोरे।
चंचल नैननि सों तरुनी अरु,
नैन कटाछन सों चितु चोरे॥

(२१५)

को हमकों तुमसे तपसी बिनु,
जोग सिखावन आइ है ऊधौ।
पै यह पूछियै जू० उनको सुधि,
पाछिली आवति है कबहूँ धौ॥
एक भली भई भूप भये अरु,
भूलि गये दधि माखन दूधौ।
कूबरी सी अति सूधी बधू को,
मिल्यो बर 'देव जू' स्याम सौ सूधौ॥

(२१६)

बड़ भागिन येई बिरंचि रची न,
इतौ सुख आन कहूँ तिय के।
बिछुरे न छिनौ भरि बालम तें,
'कवि देव जू' संग रहैं जिय के॥
तृन चारु चरैं रुचि सों चहुँ ओर,
चलैं चितवैं सुचि सों हिय के।
सब तें सब भाँति भली हरिनी,
निसिवासर पास रहै पिय के॥

तरुनी – युवा स्त्री। चितवै—देखे।

(२१७)

चैन के ऐन ये नैन निहारत,
मैन के को कर में न परै री।
तापर नैसिक अञ्जन देत,
निरञ्जन हू के हिये कों हरै री॥
साधुऔं होइ असाधु कहूँ,
'कवि देव' जो कारे के संग परै री।
स्याही रह्यो अरु स्याह सुतौ,
सखी आठहू जाम कुकाम करै री॥

(२१८)

बाल कों न्योति बुलाइबे कों,
बरसाने लों हौं पठई नन्दरानी।
श्री वृषभान की संपति देखि,
थकी अति ही गति औ मति बानी॥
भूलि परी मनि मन्दिर मैं,
प्रतिबिंबन देखि बिशेष भुलानी।
चारि घरी लों चितौत चितौत,
मरू करि चन्दमुखी पहिचानी॥

(२१९)

मोहि लई हिरनी लखि कै, हरि
नीरज सी बड़री अँखियान सों।
सारिका, सारिसिका, रसिका,
सुकुपोत कपोती पिकी मृदुबानि सों॥

निहारत—देखते हैं। नैसिक—थोड़ा। निरञ्जन—कृष्ण। मरू करि—कठिनता से। नीरज सी—कमल सी; रसिका—रसीली, पिकी—पपीहा।

'देव' कहै सब भूपसुता-
अनुरूप, अनूपम रूप कलानि सों।
गोपवधू से मुख की घन,
सुन्दर हेरि हरी मुसक्यानि सों॥

(२२०)

ये अखियाँ बिनु काजर कारी,
अन्यांरी चितै चित में चपटीसी।
मीठी लगैं बतियाँ मुख सीठी,
यों सौतनि के उर मैं दपटीसी॥
अङ्ग हू राग बिना अँग अङ्ग,
झकोरैं सुगन्ध की झपटी सी।
प्यारी तिहारी ये एड़ी लसै,
बिन जावक पावक की लपटी सी॥

(२२१)

कौन के होइ नहीं मैं हुलास,
सुजात सबै दुख देखत ही दबि।
जाहि लखैं बिलखैं यह भाँति,
परैं मनु सौति सरोजन पै पबि॥
याही तें प्यारी तिहारी मुखद्युति,
चन्द समान बखानत हैं कबि।
आनन ओप मलीन न होति,
पै छीनि हैं जाति छपाकर की छबि॥

अन्यारी— नुकीली। अङ्ग हू राग – उबटन। जावक—महावर
नहीं मैं- हृदय में। पबि--बज्र। मुखद्युति—आनन शोभा। छीनि-
मंद, पतली। छपाकर की छबि--चन्द्र की शोभा।

(२२२)

प्यारी के प्रान समेत पियो,
परदेस पयान की बात चलावै।
'देव जू' छोभ समेत छपा,
छतियाँ मैं छपाकर की छवि छावै॥
बोलि अली बन बीच वसन्त कौ,
मीचु समेत नगीच बतावै।
काम के तीर समेत समीर,
सरीर में लागत पीर बढ़ावै॥

(२२३)

मालती सों मलिये निस द्योस हू,
या सुखदानि है ज्यों समुझैये।
प्रीति पुरानी पुरैंनि के रैनि,
रहो नियरे न बिपत्ति बहैये॥
ऊपर ही गुन रूप अनूप,
निरन्तर अन्तर मैं पतियैये।
ये अलि दूलह भूलेंहु 'देव जू'
चम्पक फूल के मूल न जैये॥

(२१४)

श्रीवृषभान कुमारी के रूप को,
न्यारी कै को उपमा उपजावै।
चंचल नैन के सैन के बान,
कि खञ्जन मीनन कोई बतावै॥

समीर—हवा। पुरैंनि—कमल। पतियैयै—विश्वास कीजिये। न्यारी—अलग।

आनँद सों बिहसाति जबै,
'कविदेव' तबै बहुधा मन धावै।
कै मुख कैधों कलाधर है,
इतनो निहच्योई नहीं चित आवै॥

(२२५)

तेरी सी बेनी है स्याम अमाउस,
तेरीयो बेनी है स्याम अमा सी।
पूरनमासी सी तूं उजरी,
अरु तोसी उजारी है पूरनमासी॥
तेरौ सो आनन चंद लसै,
तुअ आनन मैं सखी चंद समा सी।
तोसी बधू रमणीय रमा,
'कविदेव' है तू रमणीय रमा सी॥

(२२६)

द्वार तें दूरि करौं वहु बारनि.
हारनि बाँधि मृनालनि मारो।
छाड़तु ना अपनो अपराधु,
असाधु सुभाइ अगाधु निहारो॥
वैरनि मेरी हँसै सिगरी,
जब पाँइ परे सु टरै नहिं टारो।
ऐसे अनीठि सों ईट कहै,
यह दीठि बसीठ नहीं को बिगारो॥

निहच्योई दृढ़ निश्चय।